योगविद्या

वर्ष 4 अंक 1
जनवरी 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, मुम्बई, 1982

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 2-3: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, मुम्बई, 1975 & 1978; 4-8: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की मुम्बई यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

योग और विज्ञान

योग और विज्ञान परस्पर सम्बन्धित हैं। योगी मानसिक शक्तियों के नियंत्रण का प्रयास करते हैं जबकि वैज्ञानिक भौतिक ऊर्जाओं का। वैज्ञानिक जाने-अनजाने राजयोगी ही हैं, अन्तर केवल इतना है कि उनकी बुद्धि बाह्य जगत् पर ही केन्द्रित रहती है।

वैज्ञानिक प्रकृति के नियमों का अध्ययन करते हैं, प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं और परिणामों से सटीक निष्कर्ष निकालते हैं। वे प्राकृतिक नियमों को भली-भाँति समझ भी लें, परन्तु उन्हें प्रकृति की उत्पत्ति और स्रोत के विषय में कुछ नहीं मालूम। इसके विपरीत, योग पूर्ण ज्ञान है। योगी को दिव्य आन्तरिक अनुभूति प्राप्त होती है। वह अपनी प्रज्ञा-दृष्टि से पदार्थ और प्रकृति की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करता है। वह प्रकृति के स्वामी, ईश्वर से सायुज्य अनुभव करता है। उसका पंच-तत्त्वों पर नियंत्रण होता है। वह अन्तर्ज्ञान से इस संसार का रहस्य समझ लेता है।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 1 · जनवरी 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित मुम्बई योग महोत्सव को समर्पित है

4 स्वयं को जानो-भारत योग यात्रा
8 शिवानन्द दिग्विजय
14 बम्बईवासियों के नाम संदेश
26 कर्मयोगी कैसे बनें
37 ध्यान का मन के विभिन्न स्तरों पर प्रभाव
41 अविस्मरणीय योगोत्सव
43 स्वयं को जानना
46 आध्यात्मिक संस्थाओं की आवश्यकता
47 हिमवीरों के लिए योग
48 कीर्तन-नामोपैथी थेरेपी
50 कल्पतरु की छाँव में
56 निरंजन दिग्विजय

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

स्वयं को जानो - भारत योग यात्रा

एक परिचय

भारत की पुण्य भूमि पर सैकड़ों ऐसे महायोगियों, महापुरुषों एवं महात्माओं का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने मातृभूमि के गौरव में वृद्धि की है और लाखों व्यक्तियों को सत्यान्वेषण का मार्ग दिखाकर धन्य किया है। उन तमाम महात्माओं के जीवन की कीर्तिगाथा आज भी कानों में गूँजती है। उनके अमूल्य चिंतन और श्रेष्ठ अनुकरणीय चरित्र ने हमारे ज्ञान एवं साहित्य के भंडार को संवृद्ध किया है। हमारा विश्वास है कि ऐसी महान् आत्माएँ अतीत काल में थीं, आज भी हैं और कल भी रहेंगी। तत्कालीन सामाजिक चेतना एवं जीवन पद्धति के अनुकूल महात्मागण त्रस्त एवं भ्रान्त लोगों के जीवन का मार्ग आलोकित करते हैं। ऐसे ही युगानुकूल-पथ-प्रदर्शक की भूमिका में भारत माता की एक और कृति संतान, अनन्त विभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचकर मानव-समाज के समक्ष योग, अध्यात्म एवं सेवा का एक उज्ज्वल दृष्टांत रखा है, जिसके लिये हम लोग इस महापुरुष के ऋणी और चिर कृतज्ञ हैं। इसके पहले अनेक महापुरुषों ने अध्यात्म, योग एवं साधना पर चर्चायें की हैं किन्तु श्री स्वामी सत्यानन्द जी जैसी सरल एवं अत्यन्त प्रभावशाली पद्धति आज तक किसी ने विकसित नहीं की है।

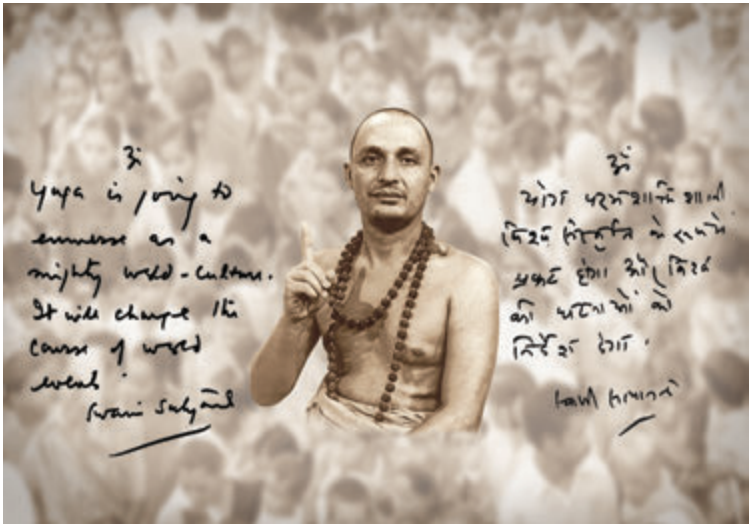

ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों पहले जिस साधना मार्ग को दिखाया था, कालान्तर में वह लुप्त हो गया था, जिसे श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने पुन: जाग्रत किया। साधारणत: देखने में आता है कि अधिकांश लोग आसन और प्राणायाम करके ही सोचते हैं कि योगाभ्यास कर रहे है। यद्यपि इनके अभ्यास से शारीरिक उपकार अवश्य होता है, किन्तु इस उपाय द्वारा शरीरस्थ आत्मा का कोई अनुभव नहीं मिलता और मन भी स्थिर नहीं होता। मन की स्थिरता के बिना साधना क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। कहाँ है सुख, क्या है दु:खों का कारण, क्या है जीवन का परम लक्ष्य, अध्यात्म जगत् के ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर योगविद्या में ही मिल पाते हैं, जिसकी प्रत्येक साधना आपके जन्म-जन्मान्तरों की गुत्थियों को इस तरह खोल देती है, मानो वे कभी थीं ही नहीं। यह ऐसी पावन विद्या है, जो आपको आत्मा की अनुभूति करायेगी। ज्ञान के अलावा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आत्मज्ञान के बाद कुछ जानना, कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। लेकिन इसकी भी कुछ शर्तें हैं। यदि आप लोग पूरा कर सकें, तो पल भर में अनुभूति हो सकती है। तो करना क्या होगा?

संसार की सभी विद्याओं का ज्ञानी भी अध्यात्म पंथ में मात्र पहली कक्षा का विद्यार्थी है। उसने शरीर-निर्वाह की विद्या पढ़ी है, आत्मानुभूति की क्रिया नहीं। भगवान ने मानव को बनाया है और स्वयं उसमें विराजमान है, यही समझकर मानव की सेवा करो, मानव बनो, रुपयों के लिये मानव को गुमराह मत करो। धन्य है विज्ञान युग का चमत्कारी मानव, जो दूसरों को गुमराह करने में खुद गुमराह हो जाता है! आदरणीय योग साधकों, दूसरों को जानने में समय मत बरबाद करो, स्वयं को जानने का प्रयास करो। जब स्वयं को जान जाओगे तो दूसरों को जानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

सभी दु:खों से मुक्ति पायी जा सकती है। आत्मज्ञान के पथ पर चलते हुए हम योग साधना से ही शान्ति और आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। जब हमें ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, तब सभी दु:खों से उबर सकते हैं। दु:ख तो जीवन का एक पक्ष है। जीवन का दूसरा पक्ष है, जागतिक अद्भुतता। यदि हम जीवन का यह पक्ष देख सकें, तो हमें शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होगा। जब हमारे हृदय बंधनहीन हो जाते हैं, तब हम जीवन की अद्भुतताओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ पाते हैं। हम पाते हैं कि हमारा शरीर, हृदय और चित्त कितने अद्भुत हैं। कष्टों के बंधनों से ही हम स्वयं को जकड़े रखते हैं। इस कारण हम अपने जीवन के इन अद्भुत दृश्यों की अनुभूति की क्षमता खो बैठते हैं। जब हम अज्ञान के अधंकार का भेदन कर पाते हैं, तब हमारे सामने शान्ति, आनन्द और साक्षात्कार का विराट् क्षेत्र उन्मुक्त होता है।

जो आपके साथ चौबीसों घण्टे रहता है, सोते-जागते, खाते-पीते, कहने का मतलब है, हर क्षण का साक्षी है, वह कहता है कि हम तुम्हारे साथ हर क्षण रहते

हैं, तुम हमारे साथ पाँच मिनट भी तो रहो। तुम दूसरों के साथ रहते हो, दूसरों को जानने में समय नष्ट करते हो। दूसरों के साथ रहने से तुम्हें मिलते हैं ईर्ष्या, द्वेष, अशान्ति, बुराई। यदि मेरे साथ पाँच मिनट भी रहोगे, तो मैं तुम्हें दूँगा आनन्द, परमानन्द, जो अनन्त काल तक तुम्हारे साथ रहेगा। तो फिर क्यों दूसरों के साथ रहकर दु:ख भोग रहे हो? अब भी समय है, अपने साथ रहने की विद्या ग्रहण करो। यदि आप अब भी दु:खों और चिन्ताओं के बंधन में जकड़े हुए हैं तो आप सृष्टि के अद्भुत अनुभवों से वंचित ही रहेंगे।

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी ने योग का जो मार्ग खोजा है, वह दु:खों और चिन्ताओं की मूल प्रकृति को भली-भाँति समझकर उनके पार जाने का मार्ग है। उन्होंने स्वयम् इस मार्ग पर चलकर जो अनुभव प्राप्त किये हैं, उन्हीं का प्रसार उन्होंने किया है और उसी ज्ञान का प्रसार उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती भारत सहित पूरे विश्व में कर रहे हैं। बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती और विश्व योग सम्मेलन 2013 के बाद स्वामी निरंजनानन्द जी नगर-नगर डगर-डगर योग का नया पैगाम पहुँचाते हुए स्वर्ण जयन्ती और विश्व योग सम्मेलन की उपलब्धियों को सत्यम् योग प्रसाद के रूप में सभी को मुक्तहस्त वितरित कर रहे हैं।

आज योग एक व्यवसाय के रूप में उभर रहा है, जिसका एक अवांछित परिणाम यह है कि यौगिक परम्परा की मौलिक शुद्धता विकृत हो रही है और यही विकृत ज्ञान समाज में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसलिए यह अनिवार्य है कि इस प्राचीन विद्या के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित रखा जाए और यही सत्यानन्द योग परम्परा की विशिष्टता है। योग और अध्यात्म के गहन अनुभवों की सरल, सुबोध व्याख्या देते हुए सत्यानन्द योग परम्परा ने अपने पचास वर्षों के जीवनकाल में एक विश्वव्यापी यौगिक क्रांति का सूत्रपात किया है। मानवता को स्वस्थ, समृद्ध और सुखी जीवन की राह बताने की दिशा में अब यह परम्परा एक और बड़ा कदम आगे लेने जा रही है। भारत योग यात्रा इसी दिशा में एक प्रयास है।

योग यात्रा का प्रथम पड़ाव मुम्बई था। अरब सागर के तट पर स्थित महाराष्ट्र की राजधानी एवं आध्यात्मिक, व्यावसायिक गौरवमयी महानगरी मुम्बई में बृहन्मुम्बई महानगरपालिका; मुम्बई के नागरिकों; आर. सी. एफ. चेम्बुर; योग साधना केन्द्र, चेम्बुर; सत्यानन्द योग केन्द्र, मुम्बई तथा सत्यानन्द योग दर्शन पीठ, त्र्यम्बकेश्वर, नाशिक के संयुक्त तत्त्वावधान में स्वयम् को जानो योगोत्सव आयोजित किया गया। योगोत्सव के परिपेक्ष्य में 16 फरवरी से 7 अप्रैल तक योग प्रेमियों के सहयोग से एम. डी. कॉलेज, खटाऊ बंगलो, डी. वाई. पाटील आयुर्वेद कॉलेज, भारतीय सेना एवं जलसेना के लिये नेवी नगर कुलाबा, कुलाबा रेसिडेन्ट्स एसोसिएशन कुलाबा, ओशिवारा रेसिडेन्स अंधेरी, एन. एस. सी. आई. क्लब वर्ली, रेडियो

क्लब कुलाबा, जे. पी. पेट्रीट स्कूल फोर्ट, सारस बाग, कारपोरेट कम्पनी, लोअर परेल, अम्बिका योग कुटीर चेम्बुर, आर. सी. एफ. युनियन बैंक, भारत संचार निगम के हॉल, पवई आदि में योग साधना सत्र आयोजित किये गये। इन सत्रों में लगभग 1000-1200 योग प्रेमियों ने भाग लिया।

10 से 12 अप्रैल तक सरदार वल्लभभाई पटेल स्टेडियम (एन. एस. सी. आई.) वर्ली एवं 13 से 15 अप्रैल तक आर. सी. एफ. मैदान, चेम्बुर में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के पावन सान्निध्य में योगोत्सव संचालित हुआ। कार्यक्रम के प्रात:कालीन सत्रों में आसन, प्राणायाम, योग निद्रा, अन्तर्मौन और अजपा जप के अभ्यासों का समावेश किया गया। शेष सत्रों में स्वामीजी के प्रबोधक सत्संग होते थे।

अपने सत्संगों और व्याख्यानों में स्वामीजी ने अपनी यात्रा के मुख्य लक्ष्य 'स्वयम् को जानो, दिव्यता को पाओ' पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने बताया कि पचास वर्षों तक योग का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् अब बिहार योग विद्यालय का एक नया अध्याय शुरू हो रहा है जो मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास हेतु समर्पित होगा। योग की भावी रूपरेखा का निरूपण करते हुए स्वामीजी ने इस बात पर जोर दिया कि योग के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है। उन्होंने दो अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं जो इस परिवर्तन को लाने में सहायक होंगी। पहली—अपने योगाभ्यास के प्रति अधिक गंभीरता, निष्ठा और प्रतिबद्धता का विकास, और दूसरी—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य रूपी षड्रिपुओं का सामना एवं नियंत्रण।

इस भारत योग यात्रा के माध्यम से स्वामीजी ने वस्तुत: बिहार योग विद्यालय के इतिहास में एक नए अध्याय का श्रीगणेश किया है, जिसने सभी उपस्थित शिष्यों, साधकों और योगप्रेमियों को प्रबल रूप से प्रेरित और प्रोत्साहित कर दिया।

अतीत के झरोखे से

शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

(स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने महान् गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सन् 1950 की चिरस्मरणीय अखिल भारतीय दिग्विजय यात्रा के प्रत्यक्ष साक्षी और अभिन्न सहभागी रहे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' से इस अद्भुत यात्रा के बम्बई चरण की कुछ प्रेरणास्पद झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं)

26 अक्टूबर। प्रात:काल के 8 बजे स्वामी जी बम्बई पहुँचे। जनता उनका स्वागत करने प्लेटफार्म को आच्छन्न किए खड़ी थी। सम्मान्य सोलीसिटर श्री हीरालाल मेहता सपरिवार पधारे थे। यहाँ तक कि 'शान्ता क्रुज' से पुरोहित-परिवार भी पधारा था।

अब बम्बई में दिग्विजयिनी को सुविशाल मार्गों पर फहराया जाने लगा। सार्वजनिक सम्मेलनों का उद्घाटन हुआ। नगर के कोने-कोने में व्याख्यानों के आयोजन हुए। कभी-कभी एक साथ शतसंख्यक कारें 'शिवानन्द दिग्विजय' के सूत्रधार तपस्वी के काषाय-स्वरूप से जनपद को धन्यनेत्र करती, तीव्रगति से, हरिनामरंग की होली में तन्मय हो, सुविशाल नगर को चिररम्य करती थीं। स्थान-स्थान पर जनता एकत्रित होती और रामनाम की संगीतावलि गाती थी। उन में स्त्रियाँ थीं, बालक थे और वृद्ध भी थे। दीन भी थे और साथ-साथ धनी और समाज के सभ्य-सम्पन्न सज्जनों का समुदाय भी किसी अचिर-साम्यवाद के प्रभाव में एक ही भूमि पर, एक ही शब्द गाते, एक ही उद्देश्य से, एक ही महापुरुष के सौम्य-स्वरूप की ओर टकटकी लगाए देखता रहता। एक ही आनन्द था; एक ही केन्द्रित विभूति थी और एक ही जमघट था। उस दिन सब लोगों ने उत्कंठापूर्वक भोजन किया। लाला जी के तिजोरी की चाबी तिजोरी पर ही छूट गई। सोलीसिटर श्री हीरालाल मेहता के वस्त्र शरीर से चिपके जा रहे थे और हेमलता के अंग-परिधान मार्गमलाकीर्ण हो गए थे। वृद्ध पुरोहित भी लम्बी-लम्बी साँसें भर रहे थे। कारों के इंजिन भी कई दिनों के बाद शक्त्याधिक श्रम किए होंगे और मालिनों के फूल उस दिन हाथों-हाथ बिक गए होंगे, 'हमारे स्वामी जी आए हैं; मुंशी जी! कच्चे पान दे दो—सुपारी भी दे देना; केले भी दे दो और नारिकेल भी। कहीं धूपबत्ती न भूल जाना।' उस दिन से लेकर अगले तीन दिनों तक मुंशी जी के नगर-परिवार के भाग्य जागे होंगे।

स्वामी जी 'लक्ष्मी बाग' में ठहरे थे। उनके आते ही व्याख्यान और कीर्त्तन होने लगे। सायंकाल को 'पत्रकार परिषद्' ने स्वामी जी के मुख से आत्मज्ञान के शब्द सुने। उनके लिए वह एक परम पुण्य अनुभव था।

दूसरे दिन प्रान्तीय-समाचार पत्रों ने अपने शीर्षभाग पर स्वामी जी के धर्म-समन्वय अथवा विश्व के मूलभूत मौलिक धर्म का व्याख्यान प्रकाशित किया था।

इस प्रकार स्वामी जी ने बम्बई में हरिनाम का पांचजन्य सुघोषित किया। यह तो प्रथम दिन है ...।

27 अक्टूबर। प्रात:काल होते-न-होते दिग्विजयी तीर्थ की यात्रा करने सहस्त्रों पुरवासी पधारे। कोई दीन थे तो कोई लक्ष्मी को करतल पर नचाने में समर्थ थे। कोई व्यवसायी थे तो कोई शासन-विभाग के कर्मचारी। सूर्योदय होते ही ट्रामगाड़ियाँ, मोटरें, किराये की कारें, इक्के, तांगे, फिटन क्रम-क्रम से एक निश्चित-स्थान के लिए जनमंडल को लेकर अग्रसर हो रहे थे। इस प्रकार नगर का जनमंडल 'लक्ष्मी बाग' में जाता और अपने जीवन के अज्ञान का निराकरण कराता था। साथ-साथ समधिगत-विरक्तिरंजित आत्मा के अविनश्वर यश को प्राप्त करते हुए, विश्व की वृत्तियों के दासत्व से विमुक्त हो, पर्वत कन्दरा में दृढ़नियमी तथा ध्रुव-आचरणपरायण योगियों के समान ही मुदितमनस्वी बन, अपने गार्हस्थ्य-जीवन में ही तपोमहिमा के महत्प्रसाद की प्राप्ति करता था।

*　　*　　*　　*

सायंकाल के 6 बज चुके थे। 'माधव बाग' में बम्बई का जनमंडल लहरा रहा था। उसके महत्प्रशस्त प्रांगण में शुचि-समाधिस्थ महात्मागण, पूर्ण-चन्द्राननश्रीपूर्णा

महिलाएँ, सर्वलोकाभिवन्द्य राज्याधिकारी, पूर्वपुण्योपार्जित सत्फल को प्राप्त किए भक्तगण विराजमान थे। महामंडलेश्वरादिसंगीत-प्रकीर्तित श्री महेश्वरानन्द जी महाराज तथा श्री-ल-श्री प्रेमपुरी जी महाराज और हमारे स्वामी जी महाराज 'माधव बाग' में शुद्ध समाराधित महात्माओं के मध्य प्रशोभित हो रहे थे।

'माधव बाग' का वह अपूर्व जनसम्मेलन, हमने सुना, लोग कहते थे, बम्बई के धार्मिक-इतिहास में प्रथम दृश्य ही था। उन लोगों का कहना था कि कभी ऐसा जमघट नहीं हुआ। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि सभी शान्त और दत्तचित्त हो, स्वामी जी की श्रुतिपावनी वाणी सुन रहे थे। गीताधर्म और मानव-जीवन का अनन्य-सम्बन्ध सूत्रित किया जा रहा था। साथ-साथ स्वामी जी का व्याख्यान ताम्रतन्त्री में स्वरांकित भी किया जा रहा था। जिस समय उन्होंने गीतोक्त-वैराग्य पर अपना मन्त्र सन्धाना तो ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वैराग्य ही सबके नेत्रों के सम्मुख नृत्य कर रहा था। उन वैराग्याभिरंजित नेत्रों से सभी ने विश्व की कंकालवत् पदार्थवादिता को पहिचाना। वह दृश्य, हम समझते हैं, दृश्य नहीं था, अपितु अनुभूति थी; जिसका संयोग नेत्रों के स्पन्दन से हो रहा था।

इसी अवसर पर बम्बई की जनता की आरे से स्वामी जी के प्रति कई भाषाओं में अभिनन्दन पत्रों का पाठ हुआ। करतलध्वनि से सबने अभिनन्द की पुनरुक्ति की। और, जब हम 'माधव बाग' के उपरान्त मंच पर से उतरे तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो पूर्णिमा का सिन्धु उद्वेलित होने वाला हो। लाखों की इच्छा हुई कि महाराज के चरणस्पर्श-रूप आशीर्वाद के भागी बनें। किन्तु हम लोगों ने चपल-तड़िद्वत् दिग्विजयी को उस उद्वेलित-सिन्धु की सीमा से बाहर कर दिया।

एक कार के पास आते ही हमने देखा कि उसके संचालक ड्राइवर ने कार का द्वार खोलकर, स्वामी जी से बैठने की प्रार्थना की। परन्तु वह तो किसी अन्य की थी, हमें क्यों उसमें बैठना चाहिए? यदि कार का मालिक कार-संचालक पर अप्रसन्न होवे तो? किन्तु संचालक ने कहा कि वह तथा उसके मालिक के अहोभाग्य, यदि स्वामी जी ने कार में बैठने की कृपा की तो। उसने पुन: कहा कि उसके मालिक भी अन्दर गए हैं। परन्तु उन्हें जब ज्ञात होगा कि श्री स्वामी जी ने उनकी कार को धन्य जीवन किया, उनको अतीव प्रसन्नता और परितोष का ही अनुभव होगा। अत: हमारे स्वामी जी ने आसन ग्रहण किया और कुछ ही क्षणों में हम वायुवेग से 'आस्तिक समाज, मातुंगा' में व्यवस्थित आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए अग्रसर हो रहे थे, जहाँ हमारी दुस्तर-समस्या का एक दृश्य अभिनीत हुआ।

यहाँ पर स्वामी जी की उक्ति चरितार्थ हुई। 'संन्यासी की कोई स्वकीय वस्तु नहीं होती, परन्तु उसे विश्व के अणु-परमाणु के उपयोग का अधिकार है।' लोकोक्ति तो यह कि संन्यासी का स्वकीय अधिकोष भी नहीं, परन्तु वह विश्व के समस्त अधिकोषों के उपयोग का स्वामी है। इसी प्रकार संन्यासी का कोई स्वायत्त

गृह या भवन या प्रसाद नहीं होता, परन्तु कोई भी गृह विश्व में नहीं, जिसमें निवास करने का संन्यासी को अधिकार न हो; क्योंकि संन्यासी अपनत्व और ममत्व के परिच्छिन्न-व्यवहार को निर्मूल कर चुका है। उसके लिए विश्व केवल एक परिवार ही नहीं, अपि च अद्वैत-स्वरूप है।

समाज का जीवन, समाज की संस्कृति, समाज की लोक-सभ्यता, समाज की बृहत्तर-शान्ति और उसके साधारण और दैवी-धर्म उसकी विशाल-शक्तिपरायणता पर अधिष्ठित हैं। संन्यासी ही समाज का प्रथम सभ्य व्यक्ति है। संन्यासी ही समाज को जीवन की समस्याओं से परिचित कराता रहता है और उन समस्याओं के हल करने में वरदहस्त भी सिद्ध होता है। वह विश्वात्मकता का सर्वव्यापक विकास और सर्वतोमुख अभ्युदय है, जो समय-समय पर जनता को सजग करता और उसे अमरत्व, सत्य और ज्योति की ओर जाने की अभिमन्त्रणा और अभिप्रेरणा देते रहता है।

*　　*　　*　　*

नक्षत्रमालिका उदित हो चुकी थी। हम लोगों की कार मातुंगा की घनी बस्तियों के मार्गों को पार करती जा रही थी। मार्ग पर जनमंडल प्रबल प्रभंजन के समान एक ही ओर को उन्मुख हो रहा था। जनता 'शंकर मठ' के चारों ओर योजनाकार-वृत्त बनाए, कई मार्गों को रोक कर खड़ी थी। हमारी कार को गेरू-संशोभित देख, उनको यह जानने में देर नहीं लगी कि स्वामी जी आ रहे हैं। 'शंकर मठ' के अधिकारियों ने बहुत प्रयत्न किया कि जनता मार्ग दे और स्वामी जी अटारी पर से यथायोजित कार्यक्रम सम्पन्न करें। परन्तु यह कब सम्भव था कि योजनाकार-परिवृत्त-जनता अलौकिक महात्मा की सन्निधि में लोक-व्यवहार के नियन्त्रण को स्वीकार करती। यह तो नहीं हो सकता कि कहीं धन-वितरण हो रहा हो ओर आप सोचें कि धैर्यसहित प्रतीक्षा करनी चाहिए।

हमें साहस नहीं हुआ कि स्वामी जी को स्वतन्त्र छोड़ दें। हमने जान लिया कि किसी भी अवस्था में न तो जनता ही रास्ता दे सकेगी और न कोई अन्य आयोजन ही हो सकेगा। अत: हम 'भजन समाज' की ओर चले। परन्तु वहाँ का सम्मेलन और भी गहनतम था। दुकानें बन्द हो चुकी थीं। कार के जाने का कोई भी मार्ग नहीं था।

हमारे शरीर से स्वेद की अनवरत धारें प्रवाहित थीं। कार के अन्दर बैठे-बैठे हमारी स्पन्दन-शक्ति में उष्णता का संचार हो चुका था और स्वामी जी तो किसी अदृश्य अभिनय को देख रहे थे। उनकी पलकें पूर्णत: स्थिर थीं, जिसमें बाहर के दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

'भजन समाज' के अधिकारीवर्ग ने अनुभव किया कि स्वामी जी के लिए एक पग भूमि को नापना भी दुस्तर होगा। उन्होंने निवेदन किया कि स्वामी जी कार

से न उतरें। परन्तु स्वामी जी ने एक न सुनी और घटना का सूत्रपात यहाँ तक हो गया कि स्वामी जी स्वयं कार के द्वार को खोलने लगे। किन्तु जनता ने द्वार की तिल-तिल भूमि को समाकीर्ण कर, द्वार खोलने का अवसर ही नहीं दिया। हमारे आश्चर्य का पारावार नहीं रहा, जब हमने देखा कि तृणावर्त पवन-संतुल्य भक्त-समाज के वेग से हमारी कार अयन्त्रगति से पीछे की ओर प्रचलित हो रही थी, जो कुछ ही देर में चौराहे पर भी पहुँच गई। क्षण भर की देर थी कि कार के संचालक ने कुशलतापूर्वक कार को तीव्रगति से पीछे हटा कर, 'आस्तिक समाज' की ओर प्रयाण किया, जब लाखों वाणियाँ तुमुल-घोष कर रही थीं। हमने सुना वह तांडव गर्जन, 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' और सुनते गए, जब तक वे विजय ध्वनियाँ 'आस्तिक समाज' की दूरी में अन्तर्हित नहीं हो गईं।

कुछ ही देर में 'आस्तिक समाज' का मनोहर जनसमागम दृष्टिगोचर हुआ। वहाँ विशेषता यह थी कि सभी कीर्त्तन में दत्तचित्त थे। ज्यों ही स्वामी जी कार से उतरे, त्यों ही 'स्वामी जी आ गए' का यह वाक्य एक बालिका के मुख से प्रस्फुरित होता हुआ, तड़ित्पल में ही कई सहस्र भक्तों की वाणी का सुमन्त्र-सा हो गया। तो फिर क्या कहना? सिन्धुपति का उदय और तरंगावलियों का उत्तेजित नृत्य। प्रदीप्त प्रकाश और पतंगों का उसमें सम्मेलन।

स्वामी जी कार से उतर तो गए, परन्तु दो सौ गज तक की विस्तृत-जनता को पार कर जाना था। केवल एक क्षण तक नेत्र मूंद, न जाने स्वामी जी ने क्या सोचा

और दूसरे क्षण, कलरव-कलित पुरवासियों में प्रविष्ट हुए और वायु के अगोचर वेग के समान मंच की ओर पुरोग्रणी हुए। उनकी दक्षता और स्फूर्ति ने हमारे लिए पथ का निर्माण किया; हमारे मार्ग को सुमार्ग बनाया, जिसके फलस्वरूप हम उनके अनुसरण से वंचित नहीं हो पाए। वे हमारे पथ-प्रदर्शक थे और हम उनके चरणों की छाया के अनुपम-सौरभ की मनोरमता में मार्ग पर चल रहे थे। चन्द्रकिरण के समान अमृतवर्षा करते हुए स्वामी जी, मंच के उपरिभाग से विराट्-समागम के अवर्णनीय प्रसार को देख कर अति हर्षित हो उठे। उनके मुखमंडल पर उनकी वही स्वभाव सुलभ मुस्कान संचरित हो गई, जिसने कोटिश: भारतवासियों के हृदयों को मोहित किया था।

स्वामी जी ने मंच पर से देखा। वह कैलासाचलविहारी का रौद्रात्मक रूप था। लाखों की संख्या में वह प्रगहन रूप, तमसाच्छन्न विश्व को मानो विदीर्ण करने पर तुला हुआ था। काषायाम्बरधारी महाशिव के उन गणों ने सहस्रों मुण्डों से तांडव वेष को संपूजित, समभिवन्दित और समर्चित किया और अपने उस खाली खप्पर को खोला, जिसमें नटराज ने चन्द्र-कलाधर के रूप में अमृतांशुपान के लिए तथा अपने प्रव्राट् मुण्डों की शान्ति के लिए हलाहल को अमृत कर भर दिया।

स्वामी जी मानव को अपना लोकान्तर-विश्रुत अध्यात्मवाद का सन्देश दे रहे थे, सत्य का उपदेश दे रहे थे, सत्कर्म-परायणता का आदेश दे रहे थे और मानव के मन में प्रज्ञा रूप से प्रवेश कर रहे थे। उनकी सुन्दर, श्रुतिमधुर, कर्णप्रिय, नेत्रोल्लासक, हृदयानन्दिनी गीर्वाणी आकाशगंगा की देवोपम-धवलता को नि:सृत करती हुई, मरुभूमि को उपवन, क्षेत्र, ग्राम, जनपद और पत्तन के योग्य बनाती, दिग्विश्रुता-कीर्त्तिमती विजय-वैजयन्ती का महोत्सव सम्पन्न कर रही थी।

जिन लोगों ने 'शंकर मठ' तथा 'भजन समाज' में स्वामी जी के दर्शनों के सुअवसर को प्राप्त नहीं किया, वे भी 'आस्तिक समाज' में नागरिकों की संख्या को द्विगुणित करते हुए खड़े थे। उनके नेत्रों में गंगा-जमुना का प्रवाह था। उनके रोम-रोम में प्रकम्पन था। उनकी आँखें सजल हो गईं और उनके जीवन सफल हो गए।

अन्तत: कार्यक्रम सम्पूर्ण हुआ। संचालक वर्ग ने अभिनन्दन पत्र समर्पित किए। जनता ने शान्त होकर, आज्ञाकारी बालक की नाईं स्वामी जी को अपने मध्य से पार होने दिया। लाखों हृदयों में एक अमिट चित्र अंकित हो गया; एक अमर सन्देश ध्वन्यंकित हुआ और एक आदर्श की शाश्वत-स्मृति अंकुरित हो उठी, जिसने विश्व के रंग-मंच पर विश्वशान्ति का, विश्व सौहार्द और विश्वात्मकता का सूत्रपात करना था; क्योंकि लाखों हृदयों की शान्तिप्रियता ही कोटिश: हृदयों की शान्ति है; जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तिगत, परन्तु अनवरत तथा कठोर कर्त्तव्य है और यही व्यक्तिगत शान्ति ही कालान्तर में विराट्-शान्ति का अभ्युदय करती है। ऐसी शास्त्र की वाणी है।

बम्बईवासियों के नाम संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

26 अक्टूबर 1950–बम्बई आगमन

अपने चार दिन के बम्बई प्रवास में स्वामी शिवानन्द जी ने शहर के विभिन्न स्थानों में कई कार्यक्रम किये। माधव बाग में उनके सम्मान में आयोजित समारोह में बड़े जनसमूह को संबोधित किया और बॉम्बे स्पिरीच्यूअल सेन्टर, आस्तिक समाज, भजन समाज, चैतन्य प्रभु मंडली, भारतीय विद्या भवन, वैनीटी विश्राम और अन्य संस्थाओं द्वारा आयोजित सभाओं में भाग लिया। सैंडर्स्ट रोड के पास लक्ष्मी बाग में, जहाँ स्वामीजी ठहरे थे, नियमित सत्संग हुआ करते थे।

श्री स्वामीजी ने स्थानीय ऑल इण्डिया रेडियो स्टेशन पर वार्ता प्रसारित की और प्रेस कॉन्फेरेंस भी ली। वे विले पार्ले स्थित संन्यास आश्रम भी गए और कई भक्तों की शंकाओं का समाधान किया। 29 अक्टूबर को उन्होंने बम्बई से अमलसाद के लिए प्रस्थान किया।

26 अक्टूबर को शाम साढ़े चार बजे पत्रकारों ने स्वामी जी का प्रेस-इन्टरव्यू लिया। उन्होंने बम्बईवासियों के लिए लिखित संदेश दिया और फिर कहा, 'सभी शास्त्रों का सार सूत्र-रूप में बस इतना ही है–सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, अच्छा बनना, अच्छा करना, दया और करुणा। स्वयं से पूछो 'मैं कौन हूँ', स्वयं को जानो और मुक्त हो जाओ। अपमान और आघात सहो। यही उच्चतम साधना है। सब से हिल-मिल कर रहो।' फिर उन्होंने कीर्तन किया और 'सॉन्ग ऑफ दी लिटल', 'सॉन्ग ऑफ 18 इटीज़' एवं 'सॉन्ग ऑफ चिदानन्द' जैसे अपने कुछ प्रेरक अंग्रेजी गीत गाए।

बम्बईवासियों के लिए पैगाम

'पिछले डेढ़ महीने से भारतवर्ष के कोने-कोने की यात्रा करते हुए मैंने हर जगह लोगों को एक ही सवाल से विचलित पाया–आने वाले समय में भारत की विश्व में क्या भूमिका होगी?

हिमालय से लेकर लंका तक लोगों ने बार-बार यह सवाल किया कि हम संन्यासी इस विषय पर क्या प्रकाश डाल सकते हैं। मेरे पास इस प्रश्न का एक स्पष्ट उत्तर है–स्वयं के प्रति सच्चे रहो। भारतवर्ष की हर संतान भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों का प्रतिरूप बने। इस महान् संस्कृति के सार को चंद सूत्रों में बताया जा सकता है, जैसे, *परोपकारार्थं इदं शरीरम्*–मनुष्य जीवन का एकमात्र

उद्देश्य सहज रूप से सभी प्राणियों की सेवा करना है, *अहिंसा परमो धर्मः, सत्यमेव जयते नानृतम्, आचार प्रभवो धर्मः*– धर्म का आधार नैतिकता और सदाचार है, और सर्वोपरि सूत्र यह– *यो वै भूमा तत्सुखम् न अल्पे सुखं अस्ति*– स्थायी सुख की प्राप्ति इस दोषपूर्ण संसार से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति की पूर्णता में ही सम्भव है।

बम्बई के लोगों को मैं यह जरूर कहूँगा कि किसी और नगर या शहर के मुकाबले यहाँ इस कर्त्तव्य का ज्यादा निर्वाह करना होगा, क्योंकि बम्बई 'गेटवे ऑफ इण्डिया' है। विदेशी सभ्यताओं के प्रतिनिधि इसी द्वार से भारत में कदम रखते हैं। जब भी कोई इस द्वार से प्रवेश कर भारतवर्ष में कदम रखे तो उसे विशुद्ध भारतीय संस्कृति के आदर्श प्रतिनिधि दिखाई दें, जो पिछली शताब्दियों में बाह्य संस्कृतियों से मिले दोषों से पूर्णतया मुक्त हों। खुद से ईमानदार रहो, सच्चे भारतीय बनो।'

–स्वामी वेंकटेशानन्द द्वारा संकलित पुस्तक 'अखिल भारतीय-लंका यात्रा के दौरान स्वामी शिवानन्द के व्याख्यान' से उद्धृत

योग साधना का क्रमिक विकास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग की शाखाएँ और अंग तो बहुत हैं, लेकिन आधुनिक मनुष्य के जीवन के लिये क्या आवश्यक है, पहले इसे समझा जाए। हर मनुष्य में आध्यात्मिक प्रवृत्ति या रुचि हो, ऐसी बात तो नहीं, लेकिन हर मनुष्य का सम्बन्ध उसके शरीर, मन और समाज से रहता है। वह जो भी संघर्ष करता है, जो भी दु:ख-तकलीफ पाता है, वह शरीर, मन और समाज से प्राप्त होता है। अगर हम उन्हीं को पहले व्यवस्थित कर दें तब फिर आध्यात्मिकता किसी से दूर भी नहीं होती है। हमें आज इसी चीज को समझने की आवश्यकता है।

पहला सोपान–हठयोग

योग साधना का पहला सोपान है हठयोग। हठयोग का प्रयोजन केवल आसन-प्राणायाम की शिक्षा देना और रोगोपचार करना नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध हमारे जीवन की दो प्रकार की ऊर्जाओं से है। एक है प्राण शक्ति जो हमारे शरीर और इन्द्रियों को जीवन प्रदान करती है, और इसका जो सूक्ष्म रूप मानसिक व्यवहारों को निर्देशित करता है, वह चित्त शक्ति कहलाता है। चित्त शक्ति केवल सोचने की प्रतिभा या प्रक्रिया नहीं है। चित्त शक्ति वह ऊर्जा है जो हमारे मन को चलायमान रखती है। अगर प्राण शक्ति का अभाव हो जाए तो शरीर दुर्बल हो जाता है। उसी प्रकार चित्त शक्ति के अभाव में मन भी दुर्बल होता है। अगर किसी के मन में चित्त शक्ति की कमी है तो उसकी बुद्धि काम नहीं करती है, उसे कुछ समझ में नहीं आता है।

हमारे मनीषियों ने कहा है कि प्राण शक्ति सौर ऊर्जा का स्वरूप है और चित्त शक्ति चंद्र ऊर्जा का एक स्वरूप है। इसी को योग की भाषा में पिंगला और इड़ा कहा गया है। पिंगला का मतलब सूर्य शक्ति या प्राण शक्ति और इड़ा का मतलब चंद्र शक्ति या चित्त शक्ति। एक है गर्म और दूसरी है ठण्ढी, एक है सक्रिय और दूसरी है निष्क्रिय। इन दो ऊर्जाओं को जागृत करने के लिए जिन मंत्रों का प्रयोग होता है वे हैं हं और ठं। इन्हीं दो मंत्रों के संयोग से हठयोग शब्द की उत्पत्ति होती है।

योग के सम्बन्ध में हठ का मतलब जोर-जबरदस्ती नहीं होता। योग में हठ नाम की कोई चीज नहीं है। हठ अगर है तो संसार में है, जैसे बालहठ या राजहठ। हठयोग का सम्बन्ध इड़ा और पिंगला नाड़ी के संतुलन से है। यही हठयोग का प्रयोजन भी है। चाहे आप आसन करो या प्राणायाम, इन्हीं दो ऊर्जाओं को व्यवस्थित करने के लिये हठयोग किया जाता है। जब ये दो ऊर्जाएँ संतुलित हो जाती हैं तब हमारा

शरीर और मन नीरोगी बनता है। जो लोग सोचते हैं कि हठयोग से चिकित्सा होती है, वे अपने विचारों को बदल लें, क्योंकि हठयोग से चिकित्सा या उपचार नहीं होता है। हठयोग से मनुष्य की ऊर्जा को बढ़ाया जाता है ताकि ऊर्जा की कमी की वजह से शरीर में जो रोग, दोष और विकार उत्पन्न हुआ है, उसका समाधान हो जाए। यह हठयोग का मौलिक सिद्धान्त है।

हठयोग के अंतर्गत नेति, धौति, बस्ती, नौलि, कपालभाति और त्राटक—ये छः षट्कर्म आते हैं, जिनका प्रयोजन शरीर के विकारों और मन की चंचलता को समाप्त करना है। नेति, धौति और बस्ती शरीर के विकारों को दूर करते हैं, शरीर को शुद्ध बनाते हैं। शरीर के तीन दोषों—वात, पित्त और कफ का शमन होता है और मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। इसके साथ आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध का भी अभ्यास होता है। आसन और प्राणायाम के द्वारा शरीर की बीमारियों को ठीक किया जाता है ताकि स्वास्थ्य की प्राप्ति हो। जब मनुष्य का शरीर रोगग्रस्त होता है, तब फिर वह अपने कर्त्तव्यों और धर्मों का निर्वाह करने में सक्षम नहीं होता। इसलिये शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त करना जीवन की प्रथम आवश्यकता है।

स्वस्थ का मतलब जो अपने में स्थित हो, जिसने अपने पूरे शरीर और मन पर नियंत्रण स्थापित किया है। शरीर, मन और प्राणों के व्यवहार पर जब तुम्हारा नियंत्रण हो जाता है, संयम हो जाता है और तुम इनकी प्रतिभाओं को निर्देशित करने लगते हैं तब फिर नीरोग अवस्था आती है, शान्ति की अवस्था आती है। शरीर शुद्ध होता है, स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

शरीर के स्वस्थ होने के पश्चात् हम प्रवेश करते हैं राजयोग में, जहाँ मन को दुरुस्त करने का प्रयास होता है। लेकिन राजयोग में प्रवेश करने से पहले मन को भी विकारमुक्त करने का प्रयास शुरू होता है हठयोग के शेष तीन षट्कर्मों के द्वारा–कपालभाति, नौलि और त्राटक। कपालभाति का परिणाम क्या होता है? अगर आप इसको सही तरीके से करोगे तो यह मस्तिष्क की क्रियाओं को शान्त करने में सक्षम है। यह अभ्यास हमारे मस्तिष्क के सामने के भाग को प्रभावित करता है जिससे संतुलन और स्थिरता की प्राप्ति होती है। एक बार मस्तिष्क संतुलित हो जाए तो फिर हम लोगों का नर्वस सिस्टम भी शांत हो जाता है।

नौलि के अभ्यास में हम पेट की मांसपेशियों को एक स्थान पर केन्द्रित करते हैं। इससे उदर क्षेत्र में जो दबाव बनता है वह कई नसों में संवेदनाएँ पैदा करता है जिससे मस्तिष्क और भावनाएँ प्रभावित होती हैं और उसके बाद ऊर्जा व्यवस्थित होती है। त्राटक की प्रक्रिया में अपने चंचल मन को एकाग्र करने का प्रयास किया जाता है।

दूसरा सोपान–राजयोग

संक्षेप में यह हुआ हठयोग का क्रम। इसके बाद हम आते हैं राजयोग में। जब महर्षि पतंजलि अपने प्रथम सूत्र में कहते हैं अथ योगानुशासनम्, तब इसका यह तात्पर्य है कि तुमने पूर्व में अपने आपको तैयार किया है और अब तुम योग की वास्तिवक शिक्षा को ग्रहण करने के लिये तैयार हो। राजयोग हमेशा दूसरे सोपान में आता है। अथ का मतलब होता है अब। अगर राजयोग पहला सोपान होता तो अथ शब्द का प्रयोग नहीं होता।

जब आपका मन हठयोग के द्वारा केन्द्रित हो गया है और चित्त की चंचलता शान्त हो गई है तब जाकर आप राजयोग में प्रवेश करते हो। जिस मन को हम पहले से ही नियन्त्रण में लाने का प्रयास कर रहे हैं, अब उसके व्यवहार को बदलने का प्रयास किया जाता है और इसलिये राजयोग की शुरुआत होती है यम और नियम से। मानसिक व्यवहार को रूपान्तरित करके फिर हम मन को अंतर्यात्रा की ओर ले जाते हैं। इस अंतर्यात्रा में आसन और प्राणायाम तीसरे और चौथे अंग में आते हैं। उनका उपयोग अपने प्राणों को व्यवस्थित रखने के लिये, अपने मन को व्यवस्थित रखने के लिए और अपने आपको अंतर्यात्रा में ले जाने के लिये किया जाता है।

राजयोग के आसन में स्थिरता और सुख आवश्यक है–*स्थिरसुखमासनम्*। जब तुम अपने आपको स्थिर कर पाओगे और जब तुम्हारे शरीर में कोई तनाव नहीं रहेगा तभी तो तुम दूसरे चीजों में अपने मन को लगा सकते हो। इसी कारण से कहा जाता है कि राजयोग हठयोग से अलग नहीं, बल्कि उसका अगला पड़ाव है।

आसन और प्राणायाम का सहारा लेकर हम अपने मन में प्रवेश करते हैं। प्रत्याहार में मन के तनावों को पहले शान्त किया जाता है और उसके बाद फिर धारणा में एकाग्रता की स्थिति आती है। फिर ध्यान की अवस्था में तन्मयता।

हमारे गुरुजी कहते थे कि ध्यान के लिए मनुष्य को तीन चीजों का प्रयोग करना आवश्यक होता है—सूक्ष्म श्वास, प्रतीक और मंत्र। सूक्ष्म श्वास का तात्पर्य भौतिक श्वास से नहीं, बल्कि उससे जो प्राणों के साथ हमारे भीतर प्रवाहित हो रही है। बहुत बार जब ध्यान का अभ्यास करवाया जाता है तब कहा जाता है कि अपने श्वास को नाभि से कण्ठ तक की एक नली में अनुभव करो, जब श्वास लेते हो तब अनुभव करो कि वह नाभि से कण्ठ तक ऊपर चढ़ रही है। यह वायु की क्रिया नहीं, बल्कि सूक्ष्म श्वास और प्राणों की क्रिया है, जो प्राणों के आरोहण और अवरोहण से जुड़ी है।

सूक्ष्म श्वास के बाद है प्रतीक। जिन लोगों ने मंत्र दीक्षा ली है उन्हें मालूम है कि मंत्र के साथ एक प्रतीक भी दिया जाता है। प्रतीक ऐसा होना चाहिये जिसके साथ कोई भावनात्मक सम्बन्ध न हो, नहीं तो तुम भावनाओं के प्रवाह में बह जाओगे और ध्यान की स्थिति समाप्त हो जायेगी। इसलिये ध्यान के लिए सूर्य, ज्योति, फूल, तारा या चन्द्रमा जैसे प्रतीकों का उपयोग किया जाता है।

ध्यान का तीसरा आयाम होता है मंत्र। मंत्र अपने आप में एक स्पन्दन है। देखा जाए तो सभी अक्षर स्पन्दन हैं, और हमारे मनीषियों ने मंत्रों का जो निर्माण किया, शब्दों की व्याख्या को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि इन स्पन्दनों को ध्यान में रखते हुए किया। यह शरीर भी मूल रूप से स्पन्दन ही है। पदार्थ का जो स्वरूप है, वह मूल में ऊर्जा ही है। पदार्थ और ऊर्जा एक दूसरे से अलग नहीं होते। अगर तुम पदार्थ से ऊर्जा को हटा दो तो पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यह शरीर भी ऊर्जा है और इस ऊर्जा में गति है, स्पन्दन है, और मंत्र भी स्पन्दन है।

एक बार एक प्रयोग हुआ था, जिसमें पन्द्रह-बीस पेण्डुलम वाली बड़ी-बड़ी घड़ियों को एक साथ कमरे में रख दिया गया। सब घड़ियों के पेण्डुलम बेतरतीब ढंग से हिल रहे थे। लेकिन तीन-चार घण्टे बाद जब इन घड़ियों को देखा गया तो सभी के पेण्डुलम एक साथ दायें-बायें हो रहे थे। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि अगर हम एक चीज को निरंतर बार-बार धैर्य के साथ करते जाएँ तो वह हमारे मन को भी समस्वरित कर देती है। इसी का नाम है मंत्र। *मननात् त्रायते इति मंत्रः*—जो मन को मनन के चक्कर से मुक्त कर सके उसे मंत्र कहते हैं। जब मन एक ही विचार में चक्कर काटते रहता है, उसको कहते हैं चिंता और चिंता सभी मानसिक प्रतिभाओं पर हावी हो जाती है। मंत्र इसी चिंता से आपको मुक्ति दिलाता है।

सूक्ष्म श्वास, प्रतीक और मंत्र—इन्हीं से प्रत्याहार की यात्रा शुरू होती है और परिणति होती है ध्यान में। ध्यान की जो क्रिया है, उसका पहला असर होता है चेतन

मन पर। हम चेतन मन की चंचलता को सम्भाल पाते हैं। और यह होता है प्रत्याहार के द्वारा, जिसका उदाहरण गीता में दिया गया है। जब अर्जुन पूछता है कि प्रत्याहार कैसे करें तो कृष्णजी कहते हैं जैसे कछुआ अपने सभी अंगों को अपने कवच के भीतर में समेटकर अपने आपको सुरक्षित बना लेता है, वैसे ही तुम प्रत्याहार करो। जब तुम संसार के संघर्ष से परेशान हो जाते हो और तुम्हें कहीं सांत्वना और शान्ति नहीं मिलती है, तब उस समय तुम अपने आपको संसार से समेटो।

कृष्णजी ने प्रत्याहार को कितने सुंदर तरीके से यहाँ पर समझाया है। जब तुम्हें संसार में सांत्वना, शान्ति, सुख और तृप्ति नहीं मिलती है, जब तुम संसार में अपने आपको भयभीत एवं असुरक्षित पाते हो तब उस समय अपनी इन्द्रियों और अपने मन को समेट लो। वही है प्रत्याहार की अवस्था। जब तुम अपनी इन्द्रियों और मन को समेट लेते हो तो मन विश्राम प्राप्त करता है क्योंकि अब इसका बाहर के विषयों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। सम्बन्ध-विच्छेद के बाद जो शिथिलीकरण की स्थिति आती है इसे ही प्रत्याहार कहते हैं और उसके बाद आती है एकाग्रता।

जैसे बल्ब का प्रकाश चारों तरफ छितराया रहता है, वैसे ही मन की शक्ति भी अभी चारों तरफ फैली हुई है। अगर किसी विधि के माध्यम से हम बल्ब के प्रकाश को एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दें तो उस प्रकाश का स्वरूप लेज़र बीम का हो जाता है और वह लोहे को भी काट सकता है। यह है धारणा की अवस्था, जब हम मन की ऊर्जाओं को संग्रहित कर एक बिन्दु पर केन्द्रित करते हैं। उसके बाद है ध्यान की अवस्था, जिसमें सबसे पहले हम अपने से ही नाता जोड़ते हैं, सम्बन्ध जोड़ते हैं। अपने से सम्बन्ध होने के बाद फिर ईश्वर, आराध्य या उस परम चेतना के साथ अपना सम्बन्ध जुड़ता है।

तीसरा सोपान–कर्मयोग

हठयोग और राजयोग के बाद जो तीसरी चीज है वह है कर्मयोग। कर्मयोग को लोग प्राय: ठीक से समझ नहीं पाते हैं, क्योंकि इसकी दार्शनिक व्याख्या भी है और इसकी व्यावहारिक व्याख्या भी है। जो लोग फिलॉसफी में जाते हैं वे कर्म

सिद्धान्त को नहीं समझ पाते हैं। भ्रमित हो जाते हैं कि कर्म करें या नहीं, और कर्म को लेकर परेशान हो जाते हैं। यह एक दृष्टिकोण हुआ। कुछ लोग समझते हैं कि कर्म करने का मतलब दिनभर केवल काम ही करते रहो। कुछ लोग समझते हैं कि कर्मयोग का मतलब नि:स्वार्थ भाव से सेवा ही करो। लेकिन इस बात को याद रखो कि कर्म आपके जीवन का सॉफ्टवेयर है। जैसे हर कम्प्यूटर में एक ऑपरेटिंग सिस्टम होता है वैसे ही इस जीवन का जो ऑपरेटिंग सिस्टम है वह न ज्ञान है, न भक्ति है, बल्कि कर्म है, क्योंकि जीवन में कर्म ही प्रधान है और जन्म से ही मनुष्य कर्म में संलग्न होता है। ज्ञान तो बाद में आता है, भक्ति बाद में आती है। पहली चीज है कर्म। जब बच्चा पैदा होता है तो सबसे पहले उससे कर्म करवाया जाता है, रुलाया जाता है। रोना भी तो एक कर्म है। उसके बाद से इन्द्रियों का कर्म होता है, बुद्धि का कर्म होता है, शरीर का कर्म होता है, भावनाओं का कर्म होता है और ये कर्म विभिन्न क्षेत्रों में होते हैं। ये ही मनुष्य के जीवन, चरित्र और स्वभाव को बनाते या बिगाड़ते हैं। इसलिये राजयोग के बाद तीसरी चीज है कर्मयोग।

कर्मयोग को समझने का सबसे सरल तरीका है कि यह मानकर चलो कि कर्म में पूर्णता की प्राप्ति होनी चाहिये। हमें लगभग पैंतालीस साल हो गये हैं आश्रम जीवन व्यतीत करते-करते और आश्रम की दिनचर्या रोज तो बदलती नहीं है। सबेरे उठना है, झाड़ू-पोंछा लगाना है। जो घर में दिनचर्या होती है वैसी आश्रम में भी होती है। बहुत-से लोग हमसे कहते हैं कि स्वामीजी, गुरु होकर आप भी रोज झाड़ू लगाते हैं! अरे! अगर गुरु नहीं लगायेगा तो फिर कौन लगायेगा, चेला? अगर गुरु अपने मद और अहंकार में किसी मर्यादा और अनुशासन को स्थापित नहीं कर सकता है तो उसे गुरु बनने का भी अधिकार नहीं है। अगर गुरु प्रेरक है तो वह केवल अध्यात्म का प्रेरक नहीं है, वह जीवन के समस्त व्यवहारों में प्रेरक का कार्य करता है। हमारे गुरुजी को जिन्होंने देखा है, वे इस बात को जानते हैं कि हमारे गुरुजी कभी कर्म से पीछे नहीं हटे हैं, बल्कि अगर कहीं पर झाड़ू लगाना है या टॉयलेट साफ करना है तो वे पहले पहुँचते थे और वे स्वयं अपने हाथों से करते थे ताकि दूसरे लोग उनसे शिक्षा लें।

जब कर्म करते हो तब ऐसा मानकर करो कि तुम जीवन में इसे पहली और अंतिम बार कर रहे हो। पैंतालीस साल से हम रोज झाड़ू-पोंछा लगाते आए हैं, लेकिन गुरुजी की कृपा और उनकी शिक्षा से आज तक हमारे मन में यह विचार नहीं आया कि यह तो रोज करना पड़ता है। बल्कि इसके विपरीत विचार ही आता है कि आज जो मैं झाड़ू-पोंछा लगा रहा हूँ वह कल से उत्तम हो। इस तरह जब हर कर्म पूर्णता और उत्तमता के सिद्धान्त से प्रेरित और निर्देशित होता है तब वह कर्मयोग बनता है।

जब मनुष्य कर्म को करता है, तब वह जीवन से जुड़ता है। जब मनुष्य कर्म करता है तब वह कठिनाई को समझने लगता है। बिना कर्म किये मनुष्य कठिनाई को, सुख-दु:ख को नहीं समझता। इसलिए गीता में कहा गया है कि कर्म करना

है, लेकिन कर्म से किसी प्रकार की अपेक्षा मत रखो। जो कर्म तुम्हें सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं उनके द्रष्टा बनो, साक्षी बनो।

केवल इन्द्रियों से कर्म नहीं होता, बुद्धि से भी कर्म होता है। केवल बुद्धि से ही कर्म नहीं होता, भावनाओं से भी कर्म होता है। जितने भी कर्म होते हैं उनके साथ हमारी अपेक्षाएँ जुड़ी रहती हैं। हम सब अपने कर्म का एक परिणाम खोजते हैं जो हमारे अनुकूल हो। जब परिणाम हमारे अनुकूल नहीं होता तब हमें चिंता और विषाद घेर लेते हैं। क्या इसे कर्म से अप्रभावित रहना कहा जा सकता है?

नहीं, कर्म से अप्रभावित रहने का मतलब सफलता में आह्लाद नहीं और विफलता में विषाद नहीं। यह तब सम्भव हो पाता है जब आप राजयोग सिद्ध करके कर्म में संलग्न होते हो। जब तक व्यक्ति का मन उसके नियंत्रण में नहीं है, तब तक वह कर्मफल से व्यथित और ग्रसित हो जाता है। इसीलिये अपने जीवन के व्यवहार को सुधारने के लिये कर्मयोग को यहाँ पर स्थान दिया गया है।

स्वामी शिवानन्द जी की विचारधारा

योग के तीसरे सोपान में यह जो कर्मयोग है उसे स्वामी शिवानन्द जी ने एक बहुत ही सुन्दर, व्यावहारिक रूप दिया है। इसे आज हम स्वामी शिवानन्द जी के अष्टांग योग के रूप में जानते हैं। स्वामी शिवानन्द जी का यह अष्टांग योग बहुत ही सरल है। यह राजयोग के बाद शुरू होता है, जिसमें हम फिर से संसार के साथ संलग्न होते हैं। राजयोग में हम अपने आपको संयम में लाए, अपने विचार एवं व्यवहार को सुधारा, बेहतर बनाया और उसके बाद फिर कर्मों में संलग्न हुए।

गीता के दूसरे अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछता है कि वह व्यक्ति जो इस संसार में समाधि की अवस्था को प्राप्त कर चुका है, वह कैसे रहता है। तब कृष्णजी उत्तर देते हैं कि जो व्याक्ति आत्मज्ञानी है, जो समाधि की अवस्था को प्राप्त कर चुका है, वह भी इस संसार में एक सामान्य मनुष्य की तरह कर्मों को करते हुए जीता है। लेकिन उसके कर्मों में और सामान्य कर्मों में भेद रहता है। सामान्य मनुष्य कर्म करता है अपने सुख के लिये और सिद्ध पुरुष कर्म करता है दूसरों के सुख के लिये। सामान्य मनुष्य कर्म करता है अपने स्वार्थ के लिये और योगी कर्म करता है दूसरों के जीवन में सम्पन्नता को लाने के लिये।

योग में अपने आपको स्थित करके जो कर्म होगा, वह दूसरों के लिये होगा। जब कर्म दूसरों के लिये किया जाता है और जिसमें नि:स्वार्थता की भावना रहती है, उस कर्म का नाम हो जाता है सेवा। यही अंतर है। सेवा में करुणा होती है, बलिदान होता है, जबकि सामान्य कर्म में न करुणा होती है, न बलिदान।

सेवा की प्रतिमूर्ति है माँ। किसी भी माँ के जीवन में करुणा और बलिदान, इन दो का अस्तित्व अधिक रहता है। पिताजी में करुणा और बलिदान नहीं है, पर

माँ में है। पिता करते हैं कर्म और माँ करती है सेवा। अगर माँ दफ्तर में जायेगी तो कर्म करेगी, लेकिन जब तक घर में है और दूसरों का ख्याल कर रही है, वह सेवा कर रही है। सेवा के ये दो आधार—करुणा और बलिदान, ये माँ के चरित्र में हमेशा दिखलाई देते हैं और एक योगी के चरित्र में भी दिखलाई देते हैं। उसके जीवन में करुणा और प्रेम होता है। माँ और योगी के जीवन में सिर्फ इतना ही अंतर होता है कि माँ अपने परिवार का ख्याल करती है और योगी पूरे विश्व को अपना कुटुम्ब मानकर ख्याल करता है।

कर्मयोग तो हमारे घर में हमारी माँ करती ही है, उसे सीखने के लिये आश्रम में जाने की आवश्यकता नहीं। माँ ही सबके कपड़े धोती है, सबके कमरों में झाड़ू लगाती है। यह कर्म नहीं है, यह योग है और यही सेवा है। यही स्वामी शिवानन्द जी के योग का प्रथम चरण है। सेवा जब स्वत: होती है तब प्रेम की अभिव्यक्ति उस कर्म से जुड़ जाती है, और जब प्रेम की अभिव्यक्ति कर्म से जुड़ जाती है तब देने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। जब तुम देने लगते हो तब आंतरिक पवित्रता और शुद्धि की प्राप्ति होती है। जब तुम्हारे जीवन में आंतरिक पवितत्रता और शुद्धि की प्राप्ति होती है तब तुम अच्छा बनते हो और जब तुम अच्छा बनते हो तब जो कार्य या व्यवहार तुमसे हो रहा है वह भी अच्छा बनता है। इस प्रकार स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग जो पातंजल योग के बाद आरम्भ होता है, वह है सेवा, प्रेम, दान, शुद्धता, अच्छा बनना, अच्छा करना, ध्यान और ईश्वर-अनुभूति। इन आठों अंगों का सम्बन्ध कर्मयोग से है, अपने जीवन की सकारात्मक अभिव्यक्ति से है और इसी कर्मयोग के द्वारा हम स्वयं को और अपने समाज को बदल पायेंगे।

यही शिक्षा हमारे गुरुजी ने रिखिया में दी है। जब तक वे मुंगेर में थे और योग प्रचारक के रूप में अपना कार्य कर रहे थे, तब तक उन्होंने योग दर्शन और सिद्धान्त को वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप दिया। उन्होंने समझाया और बतलाया कि योग की हमारे जीवन में क्या आवश्यकता है। लेकिन जब वे रिखिया आये तब उन्होंने वेदान्त दर्शन को एक व्यावहारिक रूप दिया– सेवा, प्रेम, दान, शुद्धता, अच्छाई और ईश्वर की अनुभूति, जिसे उन्होंने कहा आत्मभाव। यह आत्मभाव शब्द जिसका प्रयोग हमारे गुरुजी ने किया, वह आत्मा के अस्तित्व का परिचायक है। आप अक्सर कहते हो न कि आत्मा को किसी ने देखा नहीं है, हम कैसे जानें कि वह हमारे भीतर है। हमारे गुरुजी इसका जवाब देते हुए कहते हैं कि भले ही तुमने आत्मा को नहीं देखा हो, लेकिन तुमने उन प्राणियों को देखा है जिन्होंने तुम्हारे शरीर से जन्म लिया है। मतलब बच्चों को देखा है और बच्चों का जन्म माँ के गर्भ से होता है। जब बच्चे जन्म लेते हैं तब उनके साथ अपनेपन का जो सम्बन्ध हो जाता है वही आत्मिक अनुभूति है। जब हम मानते हैं कि यह मेरी संतान है, जब हम मानते हैं कि मेरी संतान मेरी अभिव्यक्ति है, मेरी भावना उसमें है, तब हम अपनी आत्मा को अपनी संतान में देखते हैं।

मान लो बेटे का एक्सीडेंट होता है। छः लोगों का एक्सीडेंट एक साथ हुआ, तुम्हारा बेटा भी उस एक्सीडेंट में था, पर तुम्हारा ध्यान केवल अपने बेटे की ओर जायेगा क्योंकि वहाँ पर तुम्हारा आत्मभाव है। उसके जो बाकी साथी थे, उनके प्रति संवेदनशीलता अवश्य रहेगी लेकिन भावनात्मक सम्बन्ध रहेगा केवल अपनी संतान के साथ, क्योंकि तुम अपने को उस संतान में देख रहे हो। क्या चीज है जो तुम उस संतान में देख रहे हो? वह है तुम्हारी आत्मा। वही आत्मा जिसे तुम अपनी संतान में देख रहे हो, उसने तुम्हें उसके प्रति इतना संवेदनशील बना दिया है कि तुम्हें प्रतिक्षण अपनी संतान के सुख और दुःख का निरंतर आभास होते रहता है।

दुःख को तो किसी ने देखा नहीं, मगर सब उसका अनुभव करते हैं अपने भीतर। दुःख का शरीर कैसा है? क्या उसके दो हाथ, दो पैर और दो कान हैं या वह मात्र एक अनुभूति है। सुख कैसा है? आदमी है या औरत है या मात्र एक अनुभूति है।

उसी प्रकार से ईश्वर को आपने देखा नहीं है कि वह राम रूप में है या कृष्ण रूप में है या देवी रूप में है। जिस रूप में भी आपको अनुभव होता है, वह आपकी अपनी अनुभूति है। यह जो अपनी अनुभूति होती है इसी को कहते हैं आत्मभाव और योग की परिणति होती है वेदान्त के इस आत्मभाव में।

तंत्र, योग और वेदान्त

योग की शुरुआत होती है तंत्र से और परिणति होती है वेदान्त में। इसलिए कह सकते हैं कि तंत्र दादा है, योग पिता है और वेदान्त बच्चा है, जिसका जन्म अभी

नहीं हुआ है। तंत्र को दादा क्यों कहा? इसलिए कि तंत्र ऐसे चिन्तनों का एक संग्रह है, जो तुम्हें अपने जीवन, मन, चेतना, ऊर्जा, संसार, प्रकृति, ईश्वर आदि के बारे में सजग बनाता है। योग तंत्र की संतान है क्योंकि जो सीख तंत्र ने दी है, योग उसी शिक्षा को आत्मसात् करने के लिये साधना के रूप में काम में आता है। और जब योग के द्वारा हम अपने आपको शुद्ध करते हैं तब फिर जीवन में वेदान्त का जन्म होता है। वेदान्त द्वैत का नहीं, अद्वैत का सिद्धान्त है। मैं और तुम का भाव जब तक है, तब तक दूरी का आभास होता है। लेकिन जब मैं और तुम में भेद नहीं रहता तो कौन-सी दूरी? अपने सम्बन्धों को देख लो, जिनसे तुम्हारी दूरी नहीं है, उनसे तुम ज्यादा भेद भी नहीं रखते हो, उनसे खुले दिल के साथ मिलते हो और सब बात बोल देते हो, लेकिन जिनसे दूरी है उनसे हमेशा सम्भल कर चलते हो कि मेरा रहस्य यह नहीं जाने। जब आत्मभाव रहता है तब दूरी नहीं होती है, और आत्मभाव के अभाव में जो दूरी होती है, उसे किसी भी पुल से पाटा नहीं जा सकता।

इसलिये कहा गया कि वेदान्त योग का पुत्र है जिसका जन्म अभी नहीं हुआ। तुम्हें कैसे मालूम पड़ेगा कि तुमने योग में सफलता हासिल की है? जब योग का बेटा जन्म लेगा तब। जब तुम्हारे जीवन में अद्वैत की भावना जागेगी। द्वैत की भावना भेद पैदा करती है। मैं और तुम, मैं ऊँचा हूँ और तुम नीचे हो, मैं बड़ा हूँ तुम छोटे हो, मैं सम्पन्न हूँ तुम गरीब हो। ये जो भेद हम आपस में देखते हैं उसका कारण है द्वैत। लेकिन अगर भेद को नहीं देखें और दूसरे के जीवन को भी उठाने का, अपने स्तर तक लाने का प्रयास करें तब उसमें सेवा और प्रेम के कारण भेद समाप्त हो जाता है और वह व्यक्ति हमारे ही परिवार का एक अभिन्न अंग हो जाता है। अपने मित्रों को ही देख लो। बहुत-से ऐसे मित्र होते हैं जो तुम्हें अच्छे-से समझते हैं, जानते हैं और जिनके सामने तुम्हारा जीवन एक खुली किताब है। जबकि परिवार के ऐसे भी सदस्य होते हैं जिनके सामने तुम अपने जीवन की किताब बन्द कर देते हो ताकि उन्हें मालूम न पड़े कि तुम पर क्या बीत रही है। इसको कहते हैं द्वैत और अद्वैत। द्वैत मात्र फिलॉसफी नहीं है, वह जीवन का व्यवहार है। और अद्वैत भी फिलॉसफी नहीं है, वह भी जीवन का एक आचरण है।

फिलॉसफी को कभी फिलॉसफी के रूप में न देखा करो, नहीं तो कभी समझ नहीं पाओगे। लेकिन अगर इस दर्शन को एक आचरण, एक साधना और एक व्यवहार के रूप में देखोगे तब इसकी गहराई, लक्ष्य, उद्देश्य और प्रयोजन को समझने में कोई दिक्कत नहीं होगी। इसी दृष्टि से हठयोग का अगला चरण है राजयोग और राजयोग की निरन्तरता है कर्मयोग। यह कर्मयोग स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग ही है। योग का क्रम इस प्रकार चलता है।

–14 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

अतीत के झरोखे से

कर्मयोगी कैसे बनें

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

27 अक्टूबर, 1950–लक्ष्मी बाग में सुबह आयोजित कार्यक्रम में लगभग दो हजार भक्तों को स्वामीजी का दर्शन और सत्संग लाभ प्राप्त हुआ। फिर जब स्वामी शिवानन्द जी ने कर्मयोग पर व्याख्यान दिया तो यह सभी के लिए सोने पर सुहागा था। उनके उद्बोधन का सारांश नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

सच्चे कर्मयोगियों को हमेशा अपने साथ भगवद् गीता रखनी चाहिये। गीता वह मापदण्ड है जिसपर आपको अपने कर्मों का हमेशा मूल्यांकन करना चाहिए। इसमें भगवान ने स्वयं योग की बड़ी सुन्दर और सारगर्भित परिभाषा दी है। *योग: कर्मसु कौशलम्*–योग सभी कार्यों में निपुणता है। कर्मयोग एक कला है। सबसे महान् कर्मयोगी, भगवान श्री कृष्ण ने भगवद् गीता में कर्मयोग की कला ही सिखाई है।

पहले आपको दैवी विधान समझना चाहिए। कोई भी देहधारी जीव एक क्षण के लिये भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसलिये जो व्यक्ति अपनी कर्मेन्द्रियों को रोककर चुपचाप बैठे रहता है, वह ढोंगी है। प्रकट रूप से भले ही वह कुछ नहीं करता, लेकिन मानसिक स्तर पर वह पूरी दुनिया के चक्कर काट रहा है। यह अकर्म-अवस्था नहीं है, क्योंकि उसने तन्मयता की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त नहीं की है, जहाँ सारे कर्म अपने आप ही समाप्त हो जाते हैं।

कर्म का सिद्धान्त

फिर आपको कारण-कार्य का गहन सिद्धान्त समझना चाहिए। आपके द्वारा किये गए प्रत्येक कर्म का भविष्य में कुछ-न-कुछ प्रभाव होगा। अगर कर्म अच्छा है तो उसका फल भी शुभदायी होगा। अगर कर्म बुरा है तो फल भी बुरा होगा। यही कर्म जन्मों की निरंतरता को बनाए रखते हैं। इसलिए न तो कर्मठता और न ही नैष्कर्मण्यता कर्मयोग हैं। फिर कर्मयोग है क्या? गीता में श्रीकृष्ण ने इसे एक पहेली के रूप में प्रस्तुत किया है–*कर्मण्यकर्म य: पश्येदकर्मणि च कर्म य:*–कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म। यह उलझी हुई बात लगती है, लेकिन कृष्ण जी ने आगे इसे ईश्वर बड़ी सुन्दरता से समझाया है–*निमित्तमात्रम् भव*–तुम मेरे निमित्त बनकर काम करो।

यह भगवान की ही शक्ति है जो तुम्हारे तन-मन को संचालित करती है। मगर माया के पाश में बंधा तुम्हारा क्षुद्र 'अहं' का भाव आगे आकर कहता है, 'यह तो मैंने किया है।' भगवान मुस्कुराकर कहते हैं, 'ठीक है, तुमने किया है तो अब फल भी तुम ही भुगतो।' और मनुष्य कर्म-बन्धन में जकड़ा जाता है। उसे अपने कर्मों का फल तो भुगतना ही होगा, इसलिए बार-बार जन्म भी लेना पड़ता है।

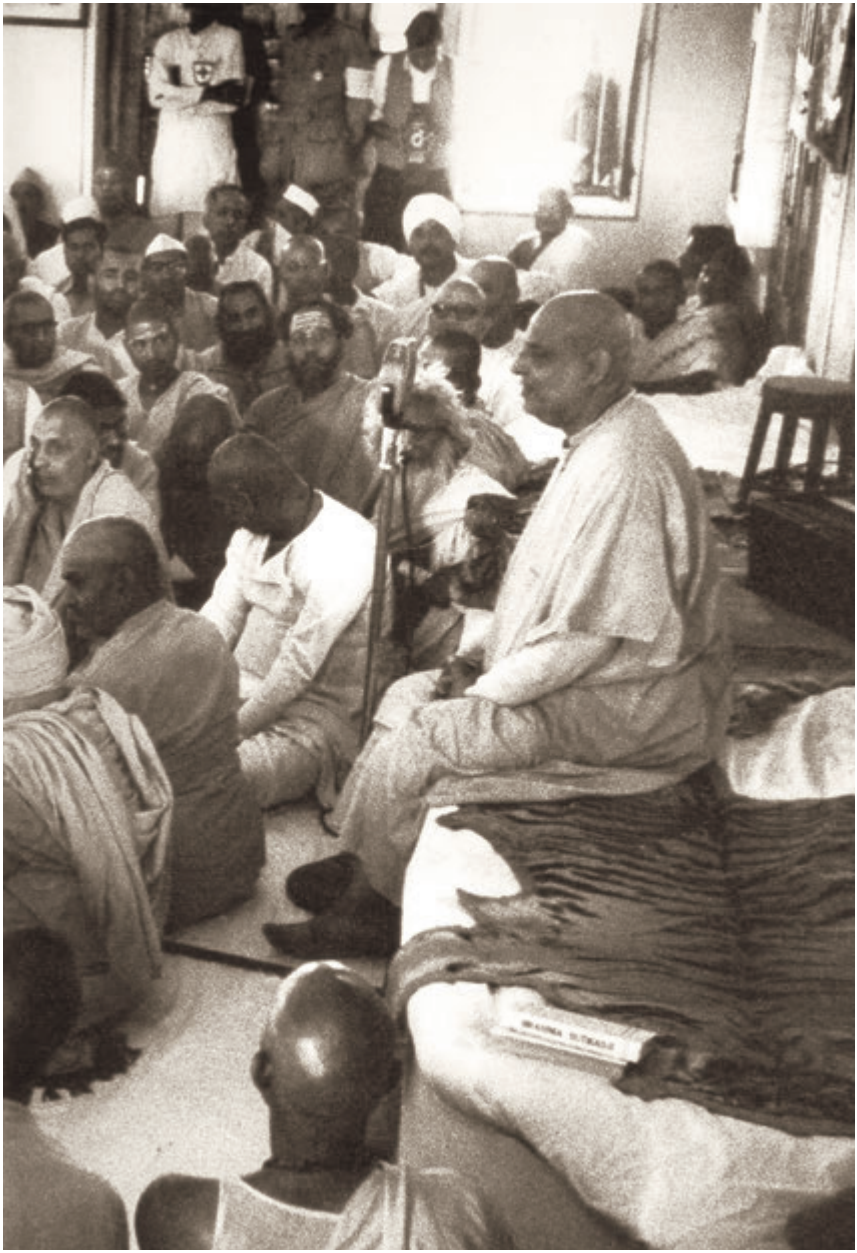

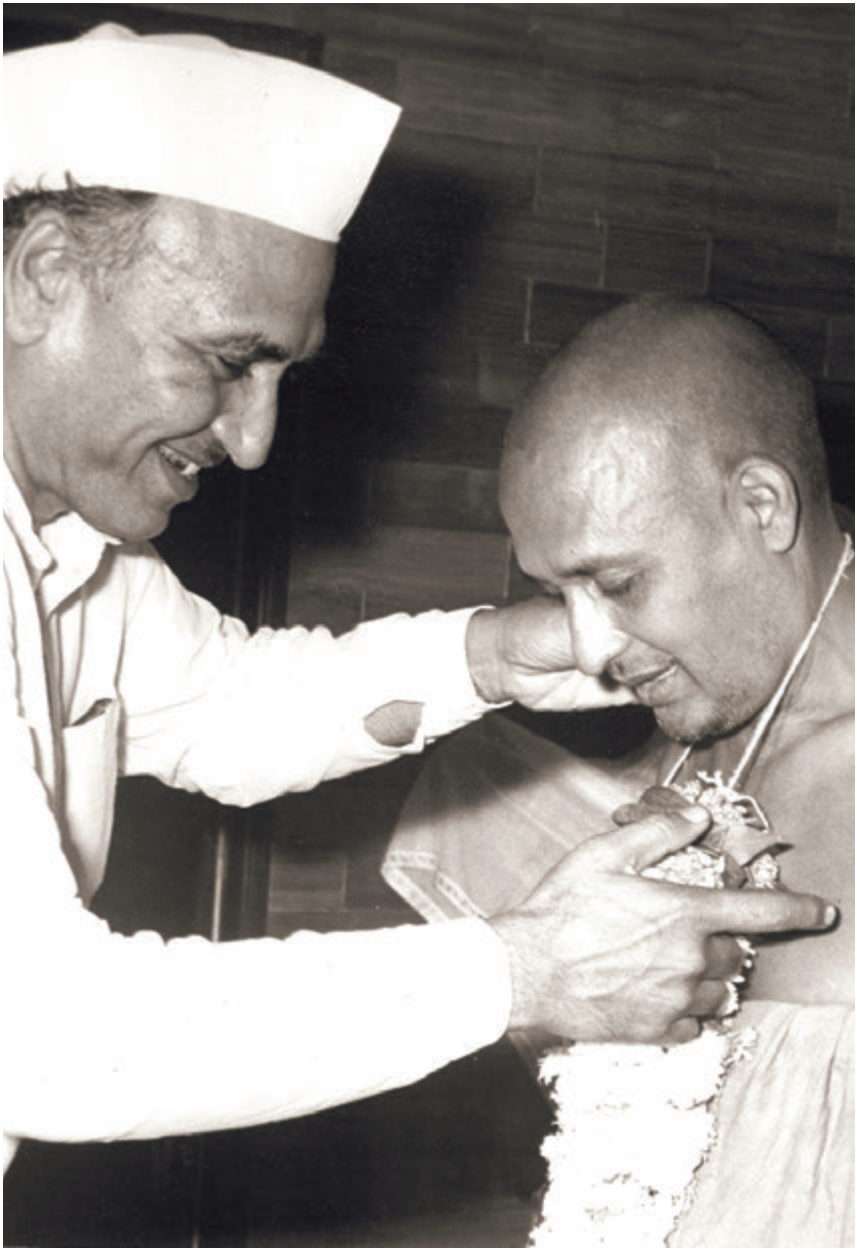

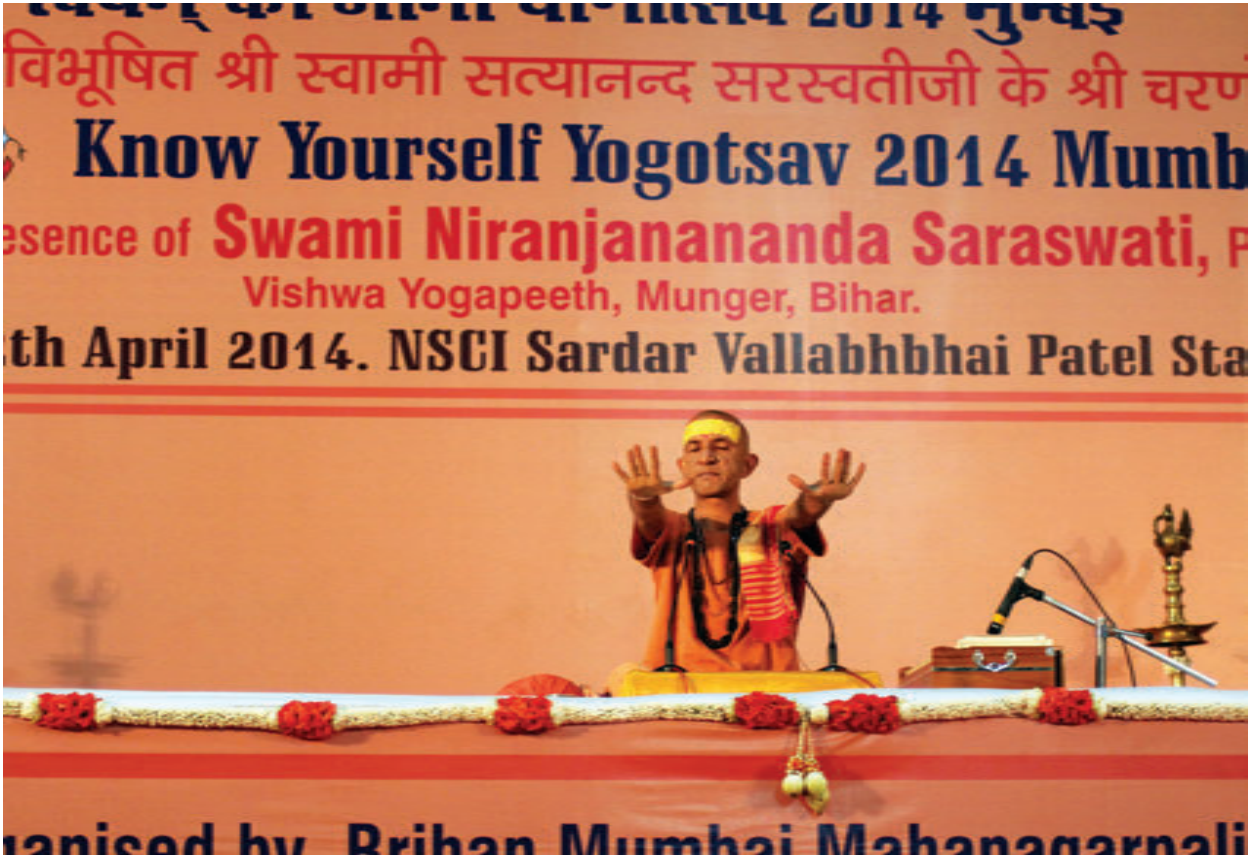
विभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीजी के श्री चरण
Know Yourself Yogotsav 2014 Mumb
esence of Swami Niranjanananda Saraswati, P
Vishwa Yogapeeth, Munger, Bihar.
th April 2014. NSCI Sardar Vallabhbhai Patel Sta

aramacharya,
adium

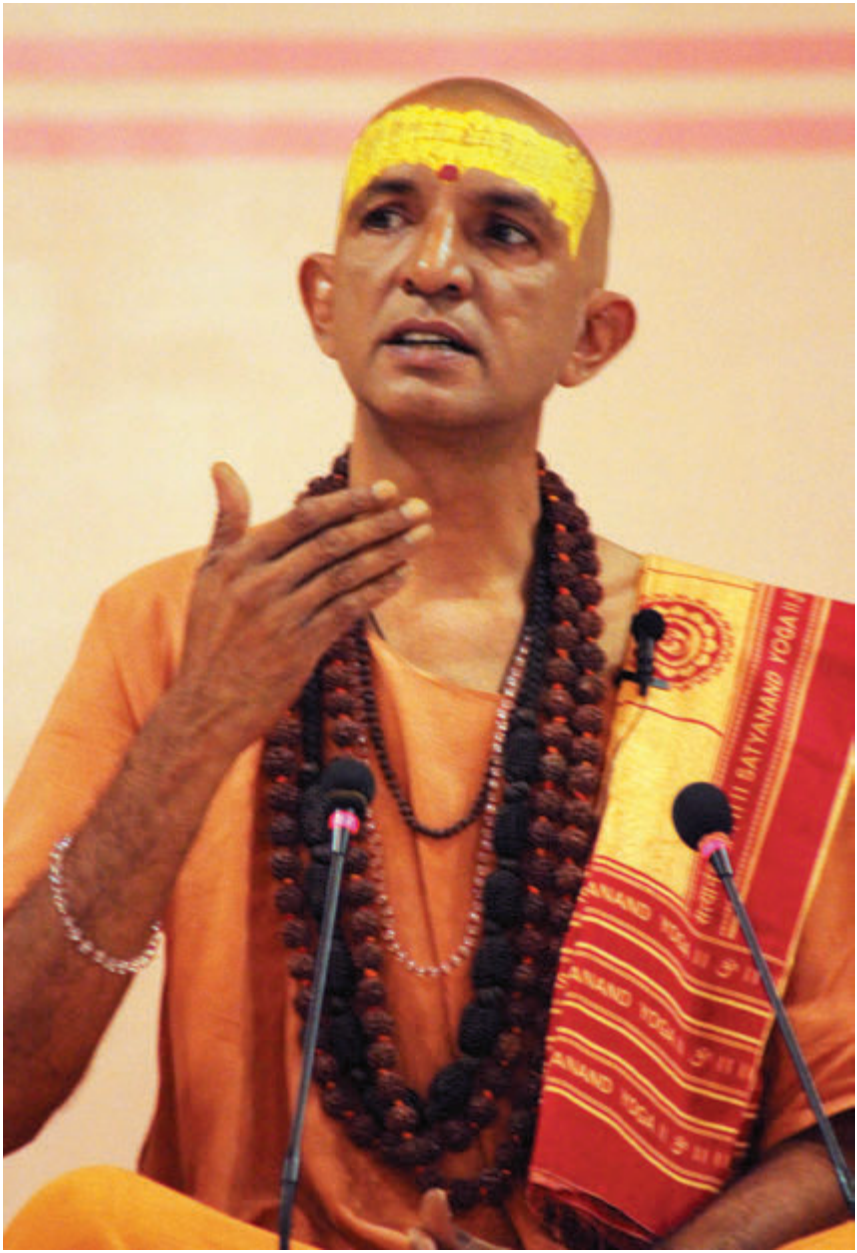
SATYANAND YOGA

इसके विपरीत अगर आप निष्ठापूर्वक इस भाव से कर्म करो कि 'ईश्वर ही सब कुछ करते हैं। यह शरीर, यह मन, यहाँ तक कि मैं का भाव भी सिर्फ उनके उपकरण हैं', तो कर्मों के इकट्ठा होने के लिए कोई पात्र ही नहीं होगा। अगर पानी की बाल्टी को समतल मैदान पर फेंक दिया जाए तो पानी चारों ओर फैलकर गायब हो जायेगा, पर अगर पानी को एक पात्र में फेंके तो उसमें इकट्ठा हो जाएगा। जब आपके अन्दर यह भाव समा जाए कि सब कुछ तो सर्वव्यापी ईश्वर ही करते हैं, तब उन कर्मों का प्रभाव किस पर पड़ेगा? उन कर्मों के पास अब जुड़ने के लिए 'मैं' रूपी चुम्बक रहा ही नहीं। इसलिए वे स्वत: विलीन हो जायेंगे।

विनम्रता–एक आवश्यक गुण

कुछ लोग सोचते हैं कि बिना अभिमान या अहं भाव के मनुष्य सक्रिय और कर्मठ नहीं हो सकता। उन्हें लगता है अहं के अभाव का अर्थ तमस् और जड़ता है। लेकिन वास्तव में देखा जाए तो निरभिमानी व्यक्ति ही सबसे कर्मठ होता है। अभिमानी और स्वार्थी व्यक्ति तो अपने तुच्छ अहंकार और महत्त्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर कर्म करता है। लेकिन निरभिमानी व्यक्ति जो ईश्वर का निमित्त बनकर कर्म करता है, वह ईश्वरेच्छा से प्रेरित होता है। व्यक्तिगत इच्छा सिर्फ अपने सुख के लिए कार्य करती है, जबकि भगवद् इच्छा सम्पूर्ण सृष्टि की भलाई को ध्यान में रखती है। तब फिर वह इच्छा कितनी शक्तिशाली होगी? उस इच्छा के अनुसार कर्म करने वाला सच्चा कर्मयोगी भी कितना सक्रिय होगा, जरा सोचिए।

प्रभु के चरण-कमलों में अपने अहंकार का समर्पण कर दो। हर कर्म का निर्वाह अपना पवित्र धर्म और कर्त्तव्य समझ कर करो। ईश्वर के हाथों में एक बाँसुरी के जैसे बन जाओ। इस विधि को बस एक दिन के लिए अपनाकर देखो। आपको अपने सम्पूर्ण स्वभाव में चमत्कारी परिवर्तन नजर आयेगा। आप सद्‌गुणों के आगार बन जाओगे। निष्काम कर्मयोगी दिव्य गुणों से परिपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वह इस पृथ्वी पर साक्षात् ईश्वर का प्रतिनिधित्व करता है। आपको परम शान्ति की अनुभूति होगी, क्योंकि ईश्वर स्वयं शान्ति-स्वरूप हैं। आपको विशुद्ध आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि ईश्वर स्वयं आनन्द-स्वरूप हैं। यही कर्मयोग का फल है—शाश्वत शान्ति और आनन्द।

कर्मयोगी ईश्वर के माध्यम के रूप में कर्म करता है और उसके लिए सभी कर्म पवित्र होते हैं। कोई कर्म छोटा या ओछा नहीं होता। अगर कोई उसे कचरे से भरी टोकरी उठाने को कहे, तो वह सहर्ष करेगा। यही सच्चे कर्मयोगी की कसौटी है। उसे हर चेहरे में प्रभु के दर्शन होंगे। उसके मुख से कोई अपमानजनक शब्द नहीं निकलेगा। वह सभी को समान दृष्टि से देखेगा।

धन-सम्पत्ति बटोरने की फिराक में मत रहो। एक महामारी आएगी और आपकी सारी धन-सम्पत्ति डूब जाएगी। आपके पास जो भी है उसे दूसरों के साथ बाँटो। इससे आपको अपार आध्यात्मिक सदा प्राप्त होगी।

हिल-मिल कर रहना

कर्मयोगी में सब के साथ हिल-मिलकर रहने की कला होनी चाहिए। अगर आप में यह भाव नहीं है तो आप हमेशा सोचोगे, 'सबको मेरे विचार सुनने चाहिए। मेरे निर्देशों का पालन होना चाहिए।' नहीं, आपको सूझबूझ से काम लेना होगा, सबको साथ लेकर चलना होगा। तभी संस्थाओं के अध्यक्ष और सचिव अपने कार्यों का कुशलता से निर्वाह कर पाएँगे। गौतम बुद्ध पृथ्वी पर बहुत पहले आए थे लेकिन आज भी वे हमारे हृदय में जीवित हैं, क्योंकि वे नि:स्वार्थी थे, महान् कर्मयोगी थे। आप सभी को ऐसा ही आदर्श कर्मयोगी बनना है। अगर आपके अन्दर दंभ और अभिमान है, तो कभी सच्ची सेवा नहीं कर पाओगे। सच्चा वेदान्ती, सच्चा कर्मयोगी बच्चों के समान सरल होता है। वही विश्व की वास्तविक सेवा कर सकता है। आपके अन्दर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव होना चाहिए। अगर आपको हर प्राणी में ईश्वर दिखता है, अगर आपके मन में दिव्य प्रेम है, अगर आपका हृदय उदार है, तभी आप संसार की सच्ची सेवा कर सकते हो। तभी आप एक पूर्ण कर्मयोगी, एक महान् जीवनमुक्त बन सकते हो। भगवान करे, आप सभी इसी जन्म में महान् जीवनमुक्त बनें।

—स्वामी वेंकटेशानन्द द्वारा संकलित पुस्तक 'अखिल भारतीय-लंका यात्रा के दौरान स्वामी शिवानन्द के व्याख्यान' से उद्धृत

ध्यान का मन के विभिन्न स्तरों पर प्रभाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग की जितनी पद्धतियाँ हैं, चाहे वे आसन-प्राणायाम की हों या ध्यान की, उनका मानव व्यक्तित्व और स्वभाव पर अलग-अलग असर पड़ता है। ध्यान का क्या प्रभाव होता है? पहला प्रभाव होता है मानसिक शिथिलीकरण। दूसरा प्रभाव क्या होता है? एकाग्रता। इसके बाद जो तीसरा प्रभाव है वह है तन्मयता। चौथा प्रभाव है वह क्षमता जिसके माध्यम से हम मन के गहन स्तरों का अन्वेषण करें।

चेतन मन के स्तर पर असर

जब हम कहते हैं कि ध्यान का पहला असर होता है रिलेक्सेशन या शिथिलीकरण, तो यह असर होता है हमारे चेतन मन में। आखिर चेतन मन ही संसार के साथ उलझता है, वही तनाव और स्ट्रेस लेता है, वही चिन्ता करता है। इसलिये चेतन मन को रिलेक्स करने के लिये ध्यान का पहला प्रयास होता है।

जब चेतन मन शिथिल और शांत होता है, तब फिर एकाग्रता आती है क्योंकि मन के विक्षेप समाप्त हो जाते हैं। उसके बाद आती है तन्मयता। यह तन्मयता भी चेतन मन तक ही सीमित है। जब दो प्रेमी आपस में बात करते हैं तो उनका मन पूरी तरह से तन्मय हो जाता है। घण्टों बीत जाते हैं पर समय का आभास ही नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द जी मजाक में कहते थे कि अगर तुम अपने प्रेमी से पाँच घण्टे बात करते हो तो वह एक मिनट जैसा लगता है, लेकिन अगर एक मिनट भी तुम्हें गरम तवे पर बिठा दिया जाए तो वह एक मिनट तुम्हें पाँच घण्टे जैसा लगेगा। एक स्थिति में तन्मयता है जहाँ देश और काल का अस्तित्व नहीं रहता, और दूसरी है विक्षेप की अवस्था जिसमें एक-एक सेकेण्ड एक-एक घण्टे की तरह लगता है।

अवचेतन मन पर प्रभाव

ध्यान की ये जो पहली तीन अवस्थाएँ मैंने आपको बतलाईं—शिथिलीकरण, एकाग्रता और तन्मयता, इनका सम्बन्ध केवल चेतन मन के साथ होता है। चेतन स्तर पर ध्यान आपको द्रष्टा बनाता है। आप अपने जीवन के विक्षेप और तनाव देखते हैं। आप अपने मन को शान्त करने का, एकाग्र और तन्मय बनाने का प्रयास करते हैं। फिर ध्यान की चौथी स्थिति आती है जब हम अवचेतन मन में जाते हैं। यहाँ ध्यान ज्ञानयोग का रूप ले लेता है और आत्म-विश्लेषण आरंभ होता है। आपके स्वभाव और व्यक्तित्व के क्या मुख्य पहलू और आदतें हैं? ये आदतें आपके अवचेतन मन और व्यवहार को प्रदर्शित करती हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद

और मात्सर्य–ये अवचेतन मन में आते हैं। आप एक-एक चीज को देखते हो, उसका विश्लेषण करते हो, उसे बदलते हो, और इस प्रकार अपने अवचेतन में जो मोथे उत्पन्न होते हैं, उन्हें निकाला जाता है।

जैसे किसी दफ्तर में कम्पलेंट बॉक्स होता है जहाँ शिकायतें डाली जाती हैं, वैसे ही हम लोगों का अवचेतन मन भी है। जीवन में जो विकार हैं, वे चेतन मन में नहीं, अवचेतन मन में उत्पन्न होते हैं, और ध्यान की चौथी अवस्था में उनका परीक्षण, निरीक्षण और व्यवस्था की जाती है। यह जो अवस्था है ध्यान की, यह सबसे कठिन होती है, क्योंकि आपको अपने भीतर बैठे शैतान से सामना करना पड़ता है।

योगदर्शन के अनुसार हमारा अवचेतन मन प्रतिभाओं का भण्डार है, दुर्गुणों का नहीं। पर अच्छाई के भण्डार पर दुर्गुणों का आवरण है ताकि कोई वहाँ तक पहुँच न सके। जैसे हम इस कमरे में दस टन सोना भर दें और सभी दरवाजों को बंद कर दें वैसे ही हमारे भीतर अच्छाई भरी है पर उसे बाँधा है बुराई के दरवाजों ने। ये छः दरवाजें हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य के। इसी कमरे के भीतर सब खजाना छिपा हुआ है, इसको पार कर लो तो स्वर्ण मिल जायेगा।

अगर तुम छः दरवाजों को न भी तोड़ो, एक पर ही काम करो, क्रोध को ही शान्त कर लो, तो दरवाजा खुल जायेगा और तुम अन्दर आ पाओगे। तुम्हें बाकी पाँच के साथ लड़ने की आवश्यकता नहीं। बाकी पाँच दरवाजें बन्द रहें, खोलो एक को ही ताकि तुम अन्दर आ सको। जिस चीज पर तुम विजय प्राप्त कर सकते हो, उसे जीतकर अपने भीतर प्रवेश करो और खजाने को प्राप्त करो।

अगर हमारे मन में ईर्ष्या है तो उस ईर्ष्या को बदलकर हम आध्यात्मिक बन सकते हैं। अगर हमारे मन में क्रोध है तो उस क्रोध को परिवर्तित कर हम अपना खजाना प्राप्त कर सकते हैं। अगर अहंकार है तो उसे सम्भालकर हम जीवन में शान्ति के खजाने को प्राप्त कर सकते हैं। हमको केवल एक चीज के पार जाने का प्रयास करना है, और यह शिक्षा हमें तब मिलती है जब हम ध्यान करते हैं।

इसके बाद जब हम लोगों का अवचेतन मन इन चीजों से अप्रभावित रहता है तब अपने अवचेतन मन में गुणों का बीजारोपण किया जाता है। कौन-से गुण? स्वामी शिवानन्द जी ने स्पष्ट बतलाया है कि मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में कौन-कौन सी मानसिक अवस्थायें बाधा बनती हैं और उनके स्थान पर कौन-से गुण लाने चाहिए। वे कहते हैं कि लोभ को दानशीलता और उदारता के गुणों से सम्भाला जा सकता है। कामुकता का सामना करने के लिए अपने मन, भावना और हृदय को शुद्ध रखो। जब मन, हृदय और भावना शुद्ध है, तब कामवासना मनुष्य को कभी प्रभावित नहीं कर सकती। मन की चंचलता को त्राटक, प्राणायाम, उपासना और मंत्र-जप से नियंत्रित किया जा सकता है। मद का शमन विनम्रता के अभ्यास से करना है। चिड़चिड़ेपन और क्रोध को तितिक्षा एवं सहनशीलता के अभ्यास से काबू में लाना है। अगर तुम यह कर सकते हो तो तुम समाधि में लीन होकर कैवल्य पद प्राप्त करोगे। इस प्रकार स्वामी शिवानन्द जी ने अवचेतन मन की नकारात्मक प्रवृत्तियों का सामना करने का सूत्र दिया है।

योगदर्शन में इसे प्रतिपक्ष भावना कहा गया है। इसको ऐसे मानिये जैसे किसी आदमी ने बंजर जमीन का टुकड़ा खरीदा है और उसमें कंकड़-पत्थर, खर-पतवार सब कुछ है। ये कंकड़-पत्थर ही हमारे लोभ, कामुकता, मद आदि को दर्शाते हैं। जब हम उस जमीन को साफ करते हैं और नए बीज बोते हैं तो यह हो जाता है प्रतिपक्ष भावना—जो है, उसे हटाकर उसके विपरीत गुण वाली चीज का बीजारोपण करना। प्रतिपक्ष भावना का यह जो सिद्धान्त है ध्यान में, वह अवचेतन मन के साथ सम्बद्ध है।

अचेतन मन और आत्मानुभूति

उसके बाद फिर हम ध्यान में आते हैं अपने अचेतन मन पर। यह हमारे संस्कारों और कर्मों का आयाम है। कर्मों का बंधन अचेतन स्तर पर होता है और कर्मों से मुक्ति पाने के लिए उन्हें अचेतन से चेतन स्तर पर लाकर हटाया जाता है। अचेतन स्तर पर ध्यान प्रक्रिया का यही प्रयोजन होता है—अपने कर्मों और संस्कारों का फाइन-ट्यूनिंग करना। जब संस्कारों और कर्मों की फाइन-ट्यूनिंग हो जाती है तो फिर हम ध्यान की चौथी अवस्था में प्रवेश करते हैं—आत्मानुभूति, जहाँ व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा की पवित्रता और शुद्धि का साक्षात्कार करता है। तब ध्यान समाधि में बदल जाता

है। समाधि संसार या शरीर से अलग होना नहीं, बल्कि मन की एक अवस्था है। गीता में इसका बहुत सुन्दर विवरण दिया गया है। दूसरे अध्याय में अर्जुन कृष्ण जी से पूछता है कि जो व्यक्ति समाधि को प्राप्त करता है वह फिर संसार में कैसे जीता है। श्रीकृष्ण जवाब देते हैं कि वह एक सामान्य मनुष्य की तरह ही संसार में जीता है, अंतर केवल इतना है कि सामान्य मनुष्य अपने बारे में सोचता है और समाधिस्थ मनुष्य दूसरों के बारे में। जो समाधि में नहीं है वह अपना हित चाहता है और जो समाधि में है वह दूसरों का हित चाहता है। स्वार्थ और नि:स्वार्थ–यही अंतर है। पूर्ण नि:स्वार्थता और निष्कामता की अवस्था को ही समाधि कहते हैं। इस तरह ध्यान की अंतिम अवस्था में हम फिर अपने जीवन के देदीप्यमान् प्रकाश का अनुभव करते हैं।

एक बार नेल्सन मण्डेला ने कहा था कि मनुष्य यदि किसी वस्तु से भयभीत है तो अपने ही प्रकाश से। मनुष्य अंधकार से भयभीत नहीं होता, बल्कि अपने ही प्रकाश से भयभीत होता है। अगर आप इस बात पर सोचियेगा तो आपको इसमें सच्चाई दिखलाई देगी। क्या मनुष्य अपने भीतर के प्रकाश को स्वीकार कर पाता है? अगर भगवान आपके सामने आकर दर्शन देते हैं और कहते हैं कि बेटा चलो मेरे साथ, तो क्या आप जायेंगे? दिल पर हाथ रखकर बोलिये। भगवान से हम रोज प्रार्थना करते हैं कि दर्शन दो, लेकिन अगर वे अभी आ जाएँ और कहें कि तुम चलो मेरे साथ तो कोई जाने को तैयार नहीं होगा। सब कहेंगे कि अपने पति या पत्नी से विदा ले लेते हैं, बच्चों की व्यवस्था कर देते हैं और उसके बाद फिर अगर समय रहा तो आपके साथ चलेंगे। निश्चित रूप से हम अपने ही प्रकाश से घबराते हैं, लेकिन जीवन का लक्ष्य उसी प्रकाश को प्राप्त करना है।

–14 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

संस्मरण

अविस्मरणीय योगोत्सव

स्वामी गौरवनाथ सरस्वती

मुझे श्री स्वामी सत्यानन्द जी के साथ बाहर जाने का, उनके साथ रहने का, उनके सत्संग-प्रवचन सुनने का बहुत मौका मिला। उसके बाद स्वामी निरंजनानन्द जी के साथ भी बहुत जगह गया। प्रवचन देने वाले कुछ लोग अपना प्लान बनाकर जाते हैं और उसी के अनुसार बोलते हैं। वे यह नहीं देखते कि सामने किस तरह के लोग बैठे हैं। उन्हें जो बोलना रहेगा वही बोलेंगे, भले लोग ऊँघते रहें, बोर होते रहें। लेकिन अनुभवी लोगों के साथ ऐसा नहीं होता। पहले वे देखेंगे कि किस तरह के लोग वहाँ बैठे हैं, उन्हें क्या चाहिये, फिर उस हिसाब से अपनी बात कहते हैं। स्वामीजी की प्रवचनशैली की यह एक बहुत बड़ी खूबी और खासियत है। मैं तो स्वामी निरंजन जी को शुरू से देखते आ रहा हूँ और विशेषकर मुझे लगता है कि गुरुजी की समाधि के बाद से स्वामी निरंजन जी की वाणी में बहुत ओज, बहुत मधुरता आई है। गुरुजी की तरह उनकी बातें एकदम साफ और स्पष्ट होती हैं।

वैसे तो योग के सभी कार्यक्रम अच्छे ही होते हैं, कोई खराब नहीं होता, लेकिन स्वाभाविक है कि लोग 'गुड, बेटर, बेस्ट' की दृष्टि से तुलना करना चाहते हैं। स्वामीजी का मुंबई में जिस तरह से कार्यक्रम चला उसे देखकर तो मैं कहूँगा कि वह बेटर-बेस्ट से भी आगे होगा। कार्यक्रम दो जगह था, एक वर्ली में जो मुंबई शहर में आता है और दूसरा चेम्बूर में। शहर में स्वाभाविक है कि वहाँ रईस और बुद्धिवादी किस्म के लोग ज्यादा आते हैं। उन्हें क्या चाहिये उसी हिसाब से मार्गदर्शन भी दिया जाता है। दूसरी तरफ सहज, सामान्य, भक्त लोग जो सही में सुनते हैं, समझते हैं और अपने जीवन में उतारने का प्रयास भी करते हैं। मैं तो बहुत जगह गया हूँ पर चेम्बूर में जो कार्यक्रम हुआ, स्वामीजी का वैसा कार्यक्रम कहीं नहीं देखा। स्वामीजी स्वयं बहुत गद्‌गद् थे वहाँ के कार्यक्रम को देखकर। वहाँ वातावरण ही एकदम अलग था। सभी के दिल और दिमाग खुले थे, सभी मस्त थे। पूरे दिन सात-आठ घंटे का कार्यक्रम रहता था। सुबह आसन-प्राणायाम की कक्षा होती थी, स्वामीजी वहाँ आधा घंटा बोलते थे। नौ से दस बजे तक सत्संग होता था। दोपहर दो से पाँच बजे तक फिर सत्संग होता था, कभी समय और भी आगे हो जाता था। फिर शाम में छः से साढ़े आठ बजे तक कार्यक्रम जारी रहता था।

इतने कार्यक्रम होते थे, फिर भी लोग आधा घंटा पहले से जाकर बैठते थे। आप तो जानते हैं शहर वाले लोग एक आसन में ज्यादा देर तक नहीं बैठ पाते हैं। कभी घुटने में दर्द, तो कभी कमर में दर्द। कहीं इधर बदलते हैं, कहीं उधर। लेकिन जब स्वामीजी बोलते थे तब क्या मजाल वहाँ से कोई हिलता भी। पिन-ड्रॉप-साइलेंस जिसको बोलते हैं। शहर के आदमी के लिए यह अपने में बहुत बड़ी साधना है। मैं तो कहता हूँ जो लोग रोज आसन-प्राणायाम करते हैं, वे भी नहीं बैठ पायेंगे। कुर्सी पर बैठने वाले लोग मूर्तिमान बैठे थे, और जमीन पर बैठने वाले लोग भी वैसे ही। जो सच्चे संत-संन्यासी होते हैं, उनकी वाणी के साथ उनका आशीर्वाद और शक्ति भी होती है। उनकी प्रतिभा और उनकी शक्ति की वजह से लोग हिल-डुल नहीं पाते हैं। उनके सत्संग में इतना ज्यादा डूब जाते हैं कि उनका दिमाग कहीं जा ही नहीं सकता है। बहुत ही शान्त चित्त से लोग स्वामीजी को सुनते थे।

इस बार स्वामीजी ने योग के बारे में बहुत स्पष्ट तरीके से कहा। कोई माई का लाल नहीं कि उनसे दुबारा प्रश्न कर सके। स्वामीजी ने साफ-साफ कहा कि आजकल योग शिक्षक केवल बीमारी के इलाज के नाम पर लोगों को योग सिखा देते हैं। योग को बस आसन-प्राणायाम तक सीमित कर दिया गया है। राजयोग के बारे में न कोई बोलता है, न कोई समझाता है, न कोई सिखाता है। हम भी जब कार्यक्रम करने बाहर जाते हैं तो देखते हैं कि लोग बस आसन और प्राणायाम को ही जानते हैं। कमर दर्द ठीक हो गया तो सोचा कि यही योग है! रक्तचाप थोड़ा नीचे गिर गया, बस यही योग है।

स्वामीजी अपने अनुभव के आधार पर बोलते हैं, अन्त:प्रेरणा से बोलते हैं। यह गुरुकृपा ही होती है जो चमत्कार करती है। इसलिए सब कुछ गुरु को समर्पित कर देना चाहिये और एक बार उनपर छोड़ दो तो खुद को पता नहीं चलता कि हमने क्या बोला, लेकिन सुनने और सीखने वाले को लगता है कि बहुत ही अच्छा कहा गया, बहुत ही अच्छा सिखाया गया। विद्यार्थियों और शिक्षक के बीच में ऐसे ही प्रेम की भावना जुड़नी चाहिये। यही योग है।

स्वयं को जानना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

इस योगोत्सव का विषय है—स्वयं को जानो और दिव्यता को पाओ। स्वयं को जानो, इसका क्या मतलब होता है? क्या यह मात्र एक दार्शनिक विचार है कि मैं आत्मा हूँ जो परमात्मा का अंश है—*ममैवांशो जीवलोके जीवभूते सनातन:*? क्या इस फिलॉसफी को लेकर चलें अपने को जानने के लिये? नहीं, अपने को जानने के लिये जीवन की व्यावहारिकता को समझने का प्रयास करो। अपने को जानने के लिये ईश्वर को जानने का प्रयास मत करो, पहले अपने को समझने का प्रयास करो।

जब मनुष्य योग और साधना की पद्धति से जुड़ता है तब अपने पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों, आदतों, स्वभाव, अपेक्षाओं और कामनाओं के साथ जुड़ता है। क्या हर व्यक्ति का समझने या जानने का एक ही तरीका है? विकास की सीढ़ी पर तो हम लोग अलग-अलग सोपानों पर खड़े हैं। सब लोग एक स्तर पर नहीं हैं। कोई अच्छा है, कोई कम अच्छा है, कोई ज्यादा अच्छा है। किसी की सोच बेहतर है, किसी की सोच थोड़ी कम है, किसी की सोच निकृष्ट है। अगर हम एक ही सोपान पर खड़े होते तो सबका चिन्तन, व्यवहार और आचरण एक ही प्रकार का होता। लेकिन ऐसा नहीं है और जो सीमित करने का कारण है, वह है मनुष्य की अपनी सजगता।

हम अपने आपको समझने के लिये अपनी सजगता का उपयोग नहीं कर पाये हैं। अपने जीवन में कोई भी मनुष्य दोष नहीं देखता है। अगर कोई कहे कि तुम्हारे जीवन में हम यह दोष देख रहे हैं तो वह आदमी जिन्दगी भर के लिये शत्रु बन जाता है—तुम कौन होते हो मेरे दोष को देखने वाले। व्यक्ति उसे एक सकारात्मक सलाह के रूप में नहीं लेता, बल्कि एक आक्रमण के रूप में देखता है। हम खुद को नहीं देख पाते हैं, दूसरा हमको देखता है। अगर हम खुद को देख सकें तो हमारे जीवन के जो दोष हैं, उन्हें हम खुद दूर करना चाहेंगे, सुधार लाना चाहेंगे।

अपने को जानने के लिये करना क्या है? इस दिशा में एक सरल विधि है स्वॉन सिद्धान्त की। अपने जीवन की प्रतिभाएँ, कमजोरियाँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और जरूरतों को समझने का प्रयास करो। ईश्वर को समझने का प्रयास अभी मत करो। आत्मा को समझने का प्रयास भी मत करो अभी। पहले अपने जीवन में शान्ति और व्यवस्था को लाओ, और उसके लिये चार पन्ने लेकर बैठ जाओ। यह व्यावहारिक सूत्र बतला रहा हूँ। पहले पन्ने पर जो भी तुम्हारी प्रतिभाएँ हैं, चाहे वह आत्मविश्वास हो, साहस हो, मानसिक स्पष्टता हो, उन्हें नोट कर लो। ईमानदारी के साथ, बनावटी नहीं। इस प्रकार अपने जीवन के जो सामर्थ्य और प्रतिभाएँ हैं, जिन्हें तुम सहज रूप से अभिव्यक्त कर रहे हो, उनकी सूची पहले बनाओ।

दूसरी सूची बनाओ अपनी कमजोरियों की, जैसे, भय, असुरक्षा, हीनता, आलस्य आदि। लोगों के सामने जाने में हम जो हिचकिचाते हैं, डर लगता है, दूसरों के दबाव को झेल नहीं पाते, अपने विचारों को स्पष्टता से अभिव्यक्त नहीं कर पाते, गुस्सा आता है—मतलब जो भी तुम्हारी कमियाँ हैं, सबको दूसरे पन्ने पर लिख दो।

तीसरे पन्ने पर अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ लिखो, और देखने का प्रयास करो कि कौन-सी प्राप्य हैं और कौन-सी अप्राप्य। सामान्य रूप से आदमी तौलता नहीं है कि क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य, उसे तो जो विचार आता है उसके पीछे भागता है, उसे प्राप्त करने की कामना करता है। जब हम किसी अप्राप्य चीज को चाहते हैं और वह नहीं मिलती है तो निराशा और विषाद का सामना होता है।

आप लोगों ने शायद अपने भूतपूर्व राष्ट्रपति, श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी की आत्मकथा—'ऑन दी विंग्स ऑफ फायर' पढ़ी होगी। उसमें अब्दुल कलाम जी ने स्वामी शिवानन्द जी के साथ अपने सम्बन्ध की चर्चा की है। मैं आपको यह उदाहरण इसलिए दे रहा हूँ कि इसमें एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बिन्दु निहित है। अब्दुल कलाम जी कहते हैं कि जब मैं भारतीय वायुसेना में भर्ती नहीं हो पाया तो बहुत निराश होकर देहरादून से ऋषिकेश आया। दुविधा में था कि घर वापिस जाऊँ या नहीं। उस समय स्वामी शिवानन्द जी का दर्शन हुआ। वे स्नान करने के लिये गंगा तट पर जा रहे थे। उन्होंने पूछा, बेटा, तुम इतने सबेरे यहाँ क्यों बैठे हो, क्या कर रहे हो? अब्दुल कलाम जी ने कहा, स्वामीजी, चिन्ता है, परेशानी है। स्वामीजी ने कहा, बाद में आकर मुझ से मिलना, अभी मैं स्नान करने जा रहा हूँ।

कुछ देर बाद जब स्वामीजी का सत्संग चल रहा था, तब अब्दुल कलाम जी उस सत्संग में गए। स्वामी शिवानन्द जी का नियम था कि सत्संग देते थे और उसके बाद चार-पाँच आदमियों को बुलाते थे और उन्हीं से उनका व्यक्तिगत साक्षात्कार और परामर्श होता था। उस बार उन्होंने अब्दुल कलाम जी को बुलाया और पूछा कि आखिर क्या हुआ जिसके कारण तुम इतने निराश हो। तब उन्होंने अपनी कहानी सुनाई।

कहानी सुनने के बाद स्वामी शिवानन्द जी केवल दो वाक्य कहते हैं। बेटा इस विफलता के बारे में चिंता मत करो। यह मानकर चलो कि भगवान ने तुम्हारे लिये कुछ दूसरा ही निश्चित किया है। यह पहली बात थी। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि तुम्हारे भीतर जो पराजय की भावना आ गई है, उसे तुम पराजित करो। गीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही संदेश दिया था। तुम अभी अपने आपको पराजित देख रहे हो, पराजय की इस भावना को पराजित करो, तभी तुम युद्ध कर पाओगे। जब तक तुम्हारे मन में 'मैं पराजित हो गया हूँ' का भाव रहेगा, तुम कभी सफल नहीं हो पाओगे।

पराजय की भावना को पराजित करो—इससे बढ़कर सामर्थ्य, क्षमता और पुरुषार्थ और क्या हो सकता है? धन-सम्पत्ति तो मनुष्य कमा सकता है, लेकिन

पराजय की भावना जो मन में एक बार आ जाती है, क्या तुम कभी इसे पराजित कर पाये हो? नहीं, और क्यों? महत्त्वाकांक्षाओं के कारण।

जब महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी नहीं होती हैं, तब हम जीवन से हार मान लेते हैं। हारे नहीं हैं लेकिन एक बार जब हार का विचार आ जाता है तो हम सच में हार जाते हैं। उसके बाद अगर भगवान भी आकर उठाने का प्रयास करेंगे, तो भी हम रोते ही रहेंगे कि मैं तो हार गया हूँ। यह होता है महत्त्वाकांक्षाओं के कारण।

महत्त्वाकांक्षा जरूर होनी चाहिये क्योंकि उसी से तो प्रेरणा मिलती है। लेकिन यह भी जानना चाहिये कि प्राप्य क्या है, और अप्राप्य क्या है। जो अप्राप्य है, उसके लिये परेशान होने की आवश्यकता नहीं और जो प्राप्य है, उसपर पूर्ण ध्यान देकर उसे पूरा करो।

चौथी चीज, एक सूची बना लो कि मेरी आवश्यकताएँ क्या हैं? घर, परिवार, शरीर, मन की क्या आवश्यकताएँ होती हैं? इस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की सूची बना लो और उसमें देखो कि हम किसे प्राथमिकता दें। जब तक मनुष्य सोचता नहीं है, वह सब चीजों को बराबर का महत्त्व देता है और अंत में किसी को सिद्ध नहीं कर पाता है।

अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए इस विधि को प्रयोग में लाओ। अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पहचान करो। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी के निर्देशानुसार प्रत्येक महीने एक सामर्थ्य को और भी मजबूत करो। प्रत्येक महीने एक कमजोरी का निर्मूलन करो, उस कमजोरी को अपनी प्रतिभा में बदल दो। प्रत्येक महीने अपने प्राप्य लक्ष्यों का विश्लेषण करो। और प्रत्येक महीने देखो कि मेरे जीवन की जो आवश्यकताएँ थीं, उन्हें मैंने कितना पाया है।

इस प्रकार अगर प्रत्येक महीने एक-एक बिन्दु को लेकर चलोगे तो बारह महीनों में तुम बारह कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर लोगे, बारह सामर्थ्यों को प्राप्त करोगे और अपने जीवन को व्यवस्थित एवं संतुलित बना पाओगे। उसी से तुम्हारे जीवन में दिव्य जीवन की यात्रा आरम्भ होगी। अपने को जानने के लिये निश्चित रूप से योग का सहारा लेते हैं, लेकिन उसके साथ ही साथ जीवन पर भी एक चिंतन और विश्लेषण होने की आवश्यकता रहती है।

–14 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

आध्यात्मिक संस्थाओं की आवश्यकता

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

28 अक्टूबर, 1950–स्वामी शिवानन्द जी ने विले पार्ले स्थित मंडलेश्वर महेश्वरानन्द जी के संन्यास आश्रम में भक्तों को यह संदेश दिया–

प्राचीनकाल में मुमुक्षु मोक्ष एवं ईश्वर प्राप्ति का मार्ग खोजने के लिए साधु-संतों की खोज में निकलते थे। आजकल जीवन की आपाधापी में ही मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि एक दिन में कुछ मिनट भी प्रभु-स्मरण के लिए निकाल ले तो बहुत है! पर ईश्वर तो कृपानिधान हैं। वे हमारी जरूरत समझते हैं। इसलिए आज साधु-संत ही मुमुक्षुओं को खोजकर उन्हें रास्ता दिखाते हैं।

आज के साधकों को संसार का त्याग कर जंगलों में गुरु की तलाश करने की जरूरत नहीं है। कुछ तो खैर ऐसा करेंगे ही और आगे चलकर मानवता के लिए आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी बनेंगे। पर ज्यादातर लोगों को घर पर ही सीखकर रोजमर्रा के जीवन में योग का अभ्यास करना होगा, और अपने दैनिक क्रियाकलापों को योग-साधना में परिवर्तित करना होगा। भगवान की लीला ही कुछ ऐसी है कि आज दुनिया में लाखों लोग व्यावहारिक योग सीखना चाहते हैं और तैयार बैठे हैं। इसलिए गुरु और शिष्य का बीच रास्ते में मिलन होना चाहिए। यह दिव्य मिलन स्थान है आश्रम या मठ जैसी आध्यात्मिक संस्था।

इन आश्रमों में हजारों स्त्री-पुरुष प्रबुद्ध साधु-संतों के सान्निध्य में रहकर कुछ सीखने आते रहेंगे। अनेक साधु-संत भी ऐसे स्थानों पर ब्रह्मज्ञान वितरित करने आएँगे। आजकल हम 'हजार लोगों के लिए एक स्कूल', 'हजार लोगों के लिए एक अस्पताल' के बारे में इतना कुछ सुनते हैं, पर आज की ज्यादा जरूरी आवश्यकता तो 'सौ लोगों के लिए एक आश्रम' की है। देश के प्रगति-एजेण्डा में आश्रमों का स्थान व्यक्तिगत घरों के ठीक बाद होना चाहिए। घर का काम है प्रकृति के आघातों से बचाना और आश्रम का काम है अपनी निम्न प्रकृति के आघातों से रक्षा करना। आश्रम वातावरण में व्यक्ति खुद को संयत करना, दिव्य जीवन जीना, अपनी दिव्यता पहचानना और शाश्वत सच्चिदानन्द प्राप्त करना सीखता है।

स्वामी शिवानन्द जी ने कीर्तन और महामृत्युंजय मंत्र के उच्चारण के साथ अपना सत्संग समाप्त किया।

इन्दु भूषण झा
सेनानी

Indu Bhushan Jha
Commandant

प्रिय श्री अभिषेक जी
प्रिय श्री रितेश जी

अर्द्धशासकीय पत्र सं० 305 /6-9-14
D.O. LetterNo.................................
48वीं वाहिनी, भारत तीमा पुलिस बल
48th Bn, Indo-Tibetan Border Police
गृह मंत्रालय / भारत सरकार
MHA/ Govt. of India
हिमाद्रिपुरम, सिसिया (वाया कोढ़ा), कटिहार
Himadripuram, Sisia (via-Kahra)
Katihar
(बिहार) पिन–854108
(Bihar) PIN - 854108

आपके द्वारा 48वीं वाहिनी, भातिसीपु बल में दिनांक–27.07.2014 से 29.07.2014 तक त्रिदिवसीय योग शिविर का संचालन किया गया। जिसमें विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम व योग का अभ्यास कराया गया। जिसमें वाहिनी के सभी अधिकारी, अधीनस्थ अधिकारी एवं हिमवीरों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। आपने योगा के प्रति वाहिनी हिमवीरों को जागरूक किया तथा नित्य प्रतिदिन उनके शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक तनाव को संतुलित करने के लिए विभिन्न प्रकार के योगा से संबंधित आसनों का व्यायाम बड़ी सरलता एवं सहजता से कराया। जिससे बल के हिमवीरों में नई स्फूर्ति तथा ऊर्जा का संचार हुआ। वाहिनी के सभी कर्मी आपके द्वारा कराये गये अभ्यास से अत्यधिक लाभांवित हुए। जिसका मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

वाहिनी में आपने हिमवीरों को प्रातःकाल योगासन करने को प्रेरित तथा उत्साहित किया जिसको हिमवीरों ने अपनी दिनचर्या का अभिन्न अंग समझते हुए प्रतिदिन योगासन की प्रक्रिया को अपनाया। आपके द्वारा योगासन से संबंधित विभिन्न प्रकार के ज्ञान दिए गए। आपने न केवल वाहिनी हिमवीरों के स्वास्थ्य के हित के प्रति नित्य भिन्न–भिन्न प्रकार के आसनों को कराया, बल्कि इन व्यायामों से आपके द्वारा समाज को स्वस्थ एवं बीमारियों से मुक्त करने हेतु रोशनी की नई किरण का आह्वान किया गया है। जो कि प्रशंसनीय है।

मैं आपके इन गुणों एवं आपके द्वारा वाहिनी के कर्मियों के मानसिक एवं शारीरिक उत्थान हेतु किये गये प्रयास की भूरी–भूरी प्रशंसा करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में आप इसी प्रकार समाज को योग के प्रति जागरूक कराते रहेंगे।

सादर शुभकामनाओं सहित।

आपका शुभेच्छु

(इन्दु भूषण झा)

प्रतिलिपि :

सचिव,
बिहार स्कूल ऑफ योगा मुंगेर (बिहार) को सूचनार्थ।

कीर्तन-नामोपैथी थेरेपी

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

कीर्तन एक बहुत ही जीवनोपयोगी चीज है। मनुष्य का विश्वास, श्रद्धा और मान्यता अपनी जगह है, पर अभी जो बात मैं कर रहा हूँ वह मान्यता या श्रद्धा की बात नहीं, बल्कि व्यावहारिकता और जीवनोपयोगिता से सम्बन्धित है। पाया गया है कि जिन लोगों को हार्ट प्रॉब्लम होता है, उनके लिये कीर्तन एक बहुत ही उत्तम तरीका है अपने हृदय रोग को दूर करने का। इस मामले में बहुत-से लोगों का व्यक्तिगत अनुभव भी रहा है। बहुत लोग अपने हृदय रोग को मात्र कीर्तन के माध्यम से नियंत्रण में ला पाए हैं।

जब आप कीर्तन करते हो, जो गा रहे हो सो अलग, लेकिन जब आपका शरीर कीर्तन में साथ देता है, जब आप ताली बजाते हो या अपने आपको भूलकर खड़े हो जाते हो और मस्ती से झूमने लगते हो, वह भीतर से उत्पन्न भावना की अभिव्यक्ति है, जिससे रक्त का संचार अच्छा होता है, पूरे शरीर में स्फूर्ति आती है, तनाव कम होता है। विश्वास न हो तो अभी कीर्तन में आजमाकर देख लेना। कैसे? टेनिस के खेल जैसे! टेनिस में एक बार इधर से बॉल मारा जाता है तो दूसरी बार उधर से। जब कीर्तन शुरू हो तो आपको अपनी आवाज कीर्तन वालों से ज्यादा मस्त करनी होगी। 'जोर' नहीं, 'मस्त' बोल रहा हूँ। जो मस्ती कीर्तन करने वालों में है, उससे ज्यादा मस्ती आप लोगों में होनी चाहिये। और जब मस्ती आयेगी तब जो भावना दिमाग की है, वह दिल की भावना में परिवर्तित हो जाएगी। दिमाग में श्रद्धा का जो विचार है, वह भावनात्मक अभिव्यक्ति का रूप ले लेता है।

कीर्तन में जो शांति और सुख मनुष्य को प्राप्त होता है वह किसी और चीज से प्राप्त नहीं होता। हमारे मनीषियों ने कलियुग के लिये नामोपैथी की थेरेपी निश्चित की है। नामोपैथी का मतलब होता है—ईश्वर के नाम द्वारा उपचार। कीर्तन नामोपैथी का एक अभिन्न अंग है। जब कहीं भी कीर्तन होता है तो दैवी शक्तियाँ भी उस कीर्तन में सम्मिलित हो जाती हैं।

नारदजी का नाम सुना होगा आपने। वे प्रेस रिपोर्टर हैं स्वर्ग के। उनका काम रहता है लोगों का इन्टरव्यू लेना और उसको छापना। एक बार नारदजी अपने रिपोर्टर के वेश में वैकुण्ठ जाते हैं। उनका उद्देश्य भगवान विष्णु का इंटरव्यू लेना रहता है कि भविष्य में संसार के लिए उनकी क्या योजना है। लेकिन जब नारदजी वहाँ पहुँचे तो उन्हें भगवान नारायण नहीं मिले। वे कैलास की ओर चल पड़े। सोचा कि वहाँ पर भगवान शंकर से कुछ बात कर रहे होंगे। वहाँ भी भगवान नारायण नहीं मिले। नारदजी ने स्वर्ग खोज लिया, पाताल खोज लिया, पूरी दुनिया खोज ली

पर कहीं भगवान दिखलाई नहीं दिये। उनकी रोजी-रोटी गई। इन्टरव्यू हुआ नहीं तो पैसा मिला नहीं। उनके मन में आक्रोश था कि भगवान ने मुझे इन्टरव्यू नहीं दिया। अगली बार जब वे भगवान नारायण से मिलते हैं तो पूछते हैं, 'भगवन्! मैं आपकी प्रेस कवरेज के लिये आया था, लेकिन आप थे नहीं। आप कहाँ गए थे?' भगवान कहते हैं, 'अभी मुंबई में जो कीर्तन हो रहा था न, वहाँ पर मैं गया था!'

नारदजी पूछते हैं, 'वहाँ क्यों गए थे? कीर्तन में तो हर प्रकार के लोग आते हैं। सब भक्त तो नहीं होते। कुछ तो आप पर शंका भी करते हैं। कुछ संन्यासियों पर भी शंका करते हैं। कुछ चमत्कार देखने चले आते हैं। कुछ ऐसे ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते हैं। जब हर प्रकार के लोग आते हैं तब आप फिर कीर्तन में क्या कर रहे थे?'

भगवान नारायण कहते हैं, 'देखो नारद, लोग तो बहुत प्रकार के आते हैं लेकिन कीर्तन में सब एक हो जाते हैं। इस बात को याद रखना नारद–

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ते तत्र तिष्ठामि नारद॥

मेरा निवास न तो वैकुण्ठ में है, न ही योगियों के हृदय में। जहाँ पर मेरे भक्त नाम का गान करते हैं, वहाँ मैं हमेशा उपस्थित रहता हूँ।'

मैंने जो बात कही है उसे ध्यान में रखियेगा। अगर आप मस्ती में कीर्तन कीजियेगा तो भगवान भी आपके साथ उतरकर मस्ती में गायेंगे, नाचेंगे और ताली बजायेंगे। अगर आप उन्हें सचमुच चाहते हैं तो कीर्तन में मस्ती को जरूर लाना।

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग निद्रा में किस प्रकार का संकल्प लेना चाहिए?

संकल्प काल्पनिक नहीं, व्यावहारिक होना चाहिए। ऐसा संकल्प कि मुझे ईश्वर का दर्शन हो जाए, फालतू संकल्प है। संकल्प ऐसा करना चाहिये जो अपने मन की गड़बड़ियों को ठीक करे, अपनी आदतों को सुधारे, अपने जीवन की अशान्ति को दूर करे। ईश्वर दर्शन का संकल्प, संकल्प नहीं होता। संकल्प होता है उस परिस्थिति को सम्भालने के लिये जिससे अभी आप प्रभावित हैं।

वह संकल्प जो हम लेते हैं अपने व्यवहार और स्वभाव को रूपान्तरित करने के लिये, अपने मन को शान्त करने के लिये और अपनी आत्मिक ग्रहणशीलता को बढ़ाने के लिये, उसे योगनिद्रा में कब लिया जाए? अभ्यास के प्रारम्भ में, जब हम मन के गहरे स्तरों में नहीं उतरे हैं, जब हम तन्द्रा की अवस्था में होते हैं। यही स्थिति अभ्यास के अंत में भी आती है। संकल्प के बारे में यह एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है।

देखा जाए तो जिन्दगी का अस्त्र संकल्प ही है। जब आदमी निर्णय या संकल्प ले लेता है तो उस संकल्प में उसकी निष्ठा होती है, उस संकल्प से उसका कर्म निर्देशित होता है। संकल्प क्या है, एक वाक्य को बार-बार दुहराना। यह संकल्प चेतन मन में नहीं, अवचेतन मन में एक बीज की तरह प्रवेश करता है, और इसीलिए इसे बार-बार बदलना नहीं चाहिए। हाँ, जब पूरा हो जाए तो जरूर नया संकल्प ले सकते हैं।

इंग्लैण्ड में जब हम योग शिक्षा देते थे तो वहाँ पर एक बार एक महिला आई जिसने हमारे साथ छ: महीने तक योगाभ्यास किया। उसके बाद एक दिन वह आकर पूछती है कि स्वामीजी, योगनिद्रा में हर सप्ताह अपना संकल्प बदलना ठीक है क्या? हमने कहा कि ऐसा होता तो नहीं है कि हम हर सप्ताह अपना संकल्प बदलें, क्यों पूछ रही हो ऐसी बात? उसने कहा कि हर सप्ताह के अंत तक मैं अपना संकल्प पूरा कर लेती हूँ, इसलिए सप्ताह के बाद मुझे दूसरा संकल्प चुनना पड़ता है। तो हमने कहा कि अगर ऐसी स्थिति है तो निश्चित रूप से अपना संकल्प बदल लो। अगर तुम्हारा संकल्प हर सप्ताह पूर्ण हो रहा है तो दूसरे को ले लो। लेकिन जब तक पूर्ण नहीं होता तब तक उसी संकल्प को लेकर चलना है।

यह तरीका बच्चों पर भी आजमाया जा सकता है। एक उदाहरण देता हूँ, रात को बच्चे नींद में अपना बिस्तर गीला कर देते हैं। कभी-कभी अति हो जाने से माता-पिता परेशान हो जाते हैं। तब उस समय क्या किया जाए, इस आदत को कैसे रोका जाए? हम लोग एक वाक्य रिकॉर्ड कर देते हैं, माँ की आवाज में। माँ की आवाज को बच्चा अपने अचेतन मन में स्वीकार करता है, बाप की आवाज

नहीं, क्योंकि माँ के साथ उसका एक आत्मिक सम्बन्ध रहता है। अगर माँ बोल दे रिकॉर्ड में कि बेटा जब तुम्हें रात में पेशाब करने की आवश्यकता हो, मुझे आकर उठा देना। इसी वाक्य को वह पच्चीस-तीस बार बोल दे।

जब बच्चा सोता है तो उस समय इसका प्रयोग करो। योग में कहा जाता है कि सोने के समय हम पहले रहते हैं चेतन अवस्था में, फिर प्रवेश करते हैं अवचेतन में और उसके बाद जाते हैं अचेतन मन में। निद्रा आने के पाँच मिनट बाद आपका मन अवचेतन में रहता है और उस समय आप इस टेप को चला दीजिये। बच्चा तो अपना संकल्प खुद ले नहीं पा रहा है, लेकिन माँ अपने वाक्यों के द्वारा उसके मन में एक बीजारोपण कर रही है। चार-पाँच दिन के पश्चात् उस बच्चे को जब पेशाब लगेगी वह उठेगा, माँ को उठायेगा, कहेगा कि मेरे को पेशाब लगी है। अनेक परिवारों ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। बच्चों की आदतों और स्वभाव को बदलने के लिये हम इस तरह के संकल्प उनको दे सकते हैं और उनके सोने के पाँच मिनट के पश्चात् इस संकल्प को चला सकते हैं। दस-बीस दिन में, एक-दो महीने में जैसे-जैसे आपके शब्द उस बच्चे के अवचेतन मन में प्रवेश करेंगे, वह उस अनुरूप अपना व्यवहार करेगा।

मैंने अपने गुरुजी से कहा कि मुझे ॐ मंत्र का जप करना है। इसपर उन्होंने कहा कि स्त्रियों को ॐ का जाप करने का अधिकार नहीं है। क्या यह सही है?

आप भी भगवान की संतान हैं, हम भी भगवान की संतान हैं। जैसे आप अपने घर में अपने लड़के और अपनी लड़की को एक प्रकार का अवसर देते हैं, एक प्रकार की शिक्षा देते हैं और दोनों के उत्थान के लिये कामना करते हैं, वैसे ही भगवान भी पुरुष और स्त्री जाति, दोनों के उत्थान के लिये कामना करते हैं।

जहाँ तक मंत्रों का सवाल है, हाँ, ऐसा बहुत लोग कहते हैं और विवाद भी हुआ है कि महिलाओं को मंत्र जप करने का अधिकार है या नहीं, महिलाओं को गायत्री मंत्र करने का अधिकार है या नहीं। ये सब विवाद सामाजिक अटकलों के कारण होते हैं। हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी और हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने कभी इस मान्यता को स्वीकार नहीं किया। अगर किसी को साधना करनी है तो माँ को ही साधना करनी है, पिता को नहीं। इस बात को आप अच्छे से याद रखिये, क्योंकि समाज के लिये माँ का जागरूक होना बहुत आवश्यक है। माँ ही बच्चों को संस्कार देती है, बाप नहीं। अगर आपमें संस्कार नहीं है तो आप अपने बच्चों को क्या संस्कार दोगे और भविष्य का निर्माण कैसे करोगे? क्या चोरी-डकैती से ही हम भविष्य का निर्माण करेंगे या किसी एक आदर्श को अपने साथ लेकर हम अपने भविष्य का निर्माण करना चाहेंगे? इसलिये जो भी साधु, जो भी गुरु, जो

भी शंकराचार्य कहते हैं कि स्त्री के लिये यह सब वर्जित है, वे गलत बोल रहे हैं, गलत बोल रहे हैं, गलत बोल रहे हैं, क्योंकि उन्होंने इस पर चिंतन नहीं किया है, अनुभव नहीं पाया है। वे केवल लिखी हुई बात कह रहे हैं।

आध्यात्मिक जगत् में भी दो प्रकार के गुरु होते हैं। एक जो कागज पर लिखी बात कहता है और दूसरा जो अनुभूति से प्राप्त चीज कहता है। जो कागज की बात कहता है वह कभी मनुष्य जीवन के बारे में चिन्तन नहीं करता है। केवल जो लिखा है उतने में ही हमें रहना है। और लिखा किसने है? उन लोगों ने जो समाज को नियंत्रित करना चाहते हैं। समाज को नियंत्रित करना और समाज के विकास को प्रोत्साहन देना, ये दो अलग-अलग चीजें हैं। यहाँ पर मंत्र समाज के नियंत्रण के लिये नहीं, बल्कि आपके विकास और कल्याण के लिये है।

ईश्वर के दरबार में सभी को समान अधिकार है। मनुष्य के दरबार में इन अधिकारों का हनन हो सकता है, लेकिन ईश्वर के दरबार में कभी नहीं।

आज जीवन के अंतिम पड़ाव में आगे की जिंदगी के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता महसूस हो रही है। पैंतीस साल गृहस्थ आश्रम में बिताये, अब मन में दुविधा है कि क्या हम संन्यास दीक्षा लेकर आश्रम जीवन से जुड़ें। शरीर इतना साथ नहीं देता, रिश्तेदारों में मन नहीं लगता, अकेले रहने का भी डर लगता है। आत्मोन्नति करनी है, फिर भी अनिश्चितता है। हम क्या करें?

बहुत उचित प्रश्न है, क्योंकि यह अपने बहुत-से वरिष्ठ नागरिकों की अवस्था दर्शाता है। अपने यहाँ जीवन को चार अध्यायों या पुरुषार्थों में देखा गया है। जीवन के पहले भाग को कहा गया है ब्रह्मचर्य आश्रम, जहाँ पर हम अपने आप को शिक्षित करते हैं। फिर जीवन के दूसरे क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, जिसको कहा जाता है गृहस्थ आश्रम। ब्रह्मचर्य आश्रम में जो हुनर और प्रतिभाएँ सीखी थीं, अब उनका उपयोग करके अपने जीवन में स्थिरता और समृद्धि लाई जाती है। उसके बाद तीसरा आश्रम जिसे कहते हैं वानप्रस्थ आश्रम, या सेवानिवृत्त जीवन। नौकरी से सेवानिवृत्त होकर घर में आते हैं, प्याज-आलू की तरह घर में बैठे रहते हैं, कभी टी.वी. देखते हैं, कभी अखबार पढ़ते हैं, कभी दोस्तों से मिलते हैं, कभी कुछ ताश वगैरह खेल लेते हैं, कभी कुछ घूमने वगैरह निकल जाते हैं। एक बच्चा अमेरिका में है, दो-तीन महीने वहाँ रहेंगे, एक रशिया में है तो एक महीना वहाँ चले गये। इस प्रकार लोग सेवानिवृत्त जीवन बिताते हैं, लेकिन यह हुआ आधुनिक तरीका।

वानप्रस्थ जीवन कैसे बिताना चाहिये, यह हमारी परम्परा में बतलाया गया है। हर व्यक्ति को एक दिन अपने सामाजिक कर्त्तव्यों और कर्मों का त्याग करना ही पड़ता है। आप मरते दम तक दफ्तर में नहीं बैठ सकते, बुद्धि काम नहीं करेगी, आँखें भी काम नहीं करेंगी, हाथ काँपने लगेंगे, लिख नहीं पाएँगे, क्या करोगे

दफ्तर में बैठकर? कहीं-न-कहीं हमें अपने सामाजिक जीवन से अलग होना है और अलग होने के बाद हमें क्या करना चाहिये?

अभी तक आपने अपने बाह्य सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया, अब अपने आध्यात्मिक जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयास करो। उसके लिये स्वाध्याय जरूरी है, साधना भी जरूरी है। आत्मनिरीक्षण हो सकता है, आत्मविश्लेषण और आत्मसुधार का प्रयास किया जा सकता है ताकि जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हो। साथ ही हमने जीवन में जिन अनुभवों को प्राप्त किया है, उस ज्ञान और अनुभव को नई पीढ़ी के लिए हस्तांतरित भी करना चाहिए।

यह सब आज घर में भी सम्भव है, आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। पूर्व काल में छोटे-छोटे गाँव-नगर होते थे, अगर तुम एक शहर से निकल गये तो सीधे जंगल में ही पहुँचते थे। इसलिये कहा जाता था कि वानप्रस्थी हो गये, मतलब जंगल में चले गये। शहर के बाहर जंगल में ही एक कुटिया बनाकर रहते थे, जिसे कहा जाता था वानप्रस्थियों का क्षेत्र। वहीं पर फिर साधु लोग भी आकर उन्हें साधना वगैरह करवाते थे। ऐसा मंत्र करो, ऐसा जप करो, ऐसे अपने मन और शरीर का ख्याल करो। इस तरह वानप्रस्थ में अध्यात्म की शिक्षा आती थी। आज भी आप रिटायरमेन्ट के बाद अपने घर में रहते हुए अपनी जीवनचर्या को इस प्रकार बदल सकते हो। नहीं तो रिटायरमेंट के बाद घर की कई परिस्थितियों को हम झेल नहीं पाते हैं, क्योंकि हमारा कोई दूसरा काम नहीं है और हम स्वयं को अपने परिवार पर बहुत ही निर्भर पाते हैं।

उस समय अगर हम अपना समय आत्मविश्लेषण, आत्मचिंतन, सेवा, सहयोग आदि में व्यतीत करें तो हमारे द्वारा समाज का कल्याण हो सकता है, उद्धार हो सकता है। घर में रहते हुए भी अपने लिये एक दिनचर्या बना लो। चाहे अकेले रहो या

परिवार के साथ, लेकिन तुम्हारी ऐसी दिनचर्या हो कि परिवार पर कोई बोझ न हो। तुम अपनी दिनचर्या का पालन करे हुए स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर सकते हो। सबेरे उठो, थोड़ा बहुत हाथ-पैर हिला लो ताकि वे सक्रिय रहें, चलने-फिरने में सुविधा रहे, जोड़ों में दर्द न रहे। मैं रिटायर्ड लोगों के लिए बोल रहा हूँ। बुढ़ापे में पीठ या जोड़ों में जो दर्द हो जाता है उसको भी तो सम्भालना है। इसलिए अपने लिये एक घण्टे की शारीरिक गतिविधि हो, फिर उसके बाद घर में भी कुछ काम-काज रहे। थोड़ा हिलडुल करके अपना बिस्तर खुद बना लिये। अपने मन को व्यस्त रखना है। समय मिलता है तो बच्चों के साथ बैठकर अपने जीवन के अनुभवों को बतलाना। कहानी के रूप में ताकि वे उससे शिक्षा ले सकें। कुछ अध्ययन करना, कुछ साहित्य पढ़ना। चाहे शेक्सपीयर पढ़ो, चाहे रामायण पढ़ो, चाहे उपनिषद् पढ़ो। इन सबको पढ़ने से कुछ बिंदु मिलेंगे चिंतन के लिए, जिन्हें आप अपने जीवन में उतार सकते हो। समय मिलता है, बैठ करके जप कर लो, घूमने के लिये जाओ। अपने आपको किसी शारीरिक या मानसिक गतिविधि में लगाए रखो। अपने परिवार वालों पर भावनात्मक रूप से निर्भर मत बनो।

यह वानप्रस्थ जीवन है और जब इस प्रकार का जीवन हम बिताते हैं, तब हमारे जीवन में जो शुद्धता और शांति आती है, वह दर्शाती है कि अब हम जीवन की चौथी अवस्था, संन्यास में प्रवेश कर रहे हैं। यह मैं सामान्य व्यक्ति के लिये बोल रहा हूँ। उस व्यक्ति के लिये संन्यास का मतलब त्याग या गेरू वस्त्र पहनना नहीं है। संन्यास का मतलब है कि मैं जिस चीज में अपने आपको पहले संलग्न रखता था, उसी चीज से अब अपने आपको मुक्त कर लिया है और दूसरी गतिविधि को अपना लिया है, जिससे मेरा कल्याण हो रहा है, शान्ति और सुख की प्राप्ति हो रही है, अपना धर्म और कर्त्तव्य निभा रहे हैं। इस प्रकार मनुष्य समाज में रहकर भी चारों पुरुषार्थों को पूरा कर सकता है। सामाजिक व्यक्ति के लिये संन्यास का मतलब संसार का त्याग नहीं है, बल्कि अपनी पुरानी गतिविधियों और वृत्तियों से मुक्त होना है। मोह-माया से संन्यास ले लिया, मतलब छोड़ दिया है मोह-माया को। अब हम अपना जीवन जीयेंगे। बच्चों से हमारी जो अपेक्षाएँ थीं, उन्हें छोड़ दिया है। उनका अपना जीवन है, हमारा अपना जीवन है। सामान्य सामाजिक जीवन में संन्यास का यह अर्थ होता है।

हम लोगों जैसे जो संन्यासी हैं, वह दूसरी चीज है। सामान्य सामाजिक जीवन में संन्यास आश्रम का तात्पर्य अनासक्ति और सामंजस्य से है। लेकिन जो संन्यास हम लोग लेते हैं उसमें है त्याग। तो दोनों अलग हो गये। त्याग में फिर संसार के साथ सम्बन्ध नहीं रहता, गुरु के साथ सम्बन्ध बन जाता है। शिष्य गुरु के अधीन हो जाता है। यह दूसरी ही अवस्था है।

इस संन्यास का सम्बन्ध आपके जीवन से अभी नहीं है। जिस संन्यास का सम्बन्ध आपके जीवन से है वह है उन चीजों से अनासक्ति जिनसे आप पिछले

पचास-साठ साल से चिपके हुए हैं। क्या आप अपने आपको उन सम्बन्धों से अलग कर सकते हैं? उसको कहा गया संन्यास आश्रम। आराम से घर में रहकर भी आप इस मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं।

रही बात आपकी आश्रम आने की, संन्यास लेने की, तो वह आपकी अपनी इच्छा है, लेकिन आपको संन्यास लेने की आवश्यकता नहीं। आश्रम अवश्य आ सकते हो क्योंकि वहाँ पर कुछ प्रेरणा मिलेगी और जो प्रेरणा मिलेगी उसको फिर घर में लाकर अपने को उसमें स्थिर कर सकते हो। आश्रम हर व्यक्ति के लिये सुविधाजनक स्थान नहीं होता है। बहुत-से लोग जाते हैं, कुछ समय बिताते हैं, लेकिन आजीवन हर व्यक्ति के लिये रहना सम्भव नहीं होता। आश्रम में भी बहुत ही कम लोग होते हैं जो आजीवन उसको अपना आधार बनाते हैं। लोग आते हैं, कुछ समय रहते हैं, जब उनका ब्रेक-थ्रू होता है, वे चले जाते हैं। हर व्यक्ति के जीवन में एक ब्रेक-थ्रू होता है और व्यक्ति उसी की खोज करता है कि हम किस प्रकार इस अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करें।

इसलिए संन्यास की परम्परा में बहुत ही कम लोग होते हैं। हमारी परम्परा में पिछले बीस-तीस साल में बीस-तीस हजार लोगों ने कर्म-संन्यास की दीक्षा ली होगी, लेकिन आज संस्था में जो सक्रिय कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं, वे पच्चीस-तीस से ज्यादा नहीं हैं, क्योंकि लोग आते हैं, एक काम को करते हैं, फिर उसके पूर्ण होने तक, ब्रेक-थ्रू होने तक निकल जाते हैं। लोग आते हैं, सीखते हैं, फिर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये निकल जाते हैं। लोग आते हैं, सीखते हैं और समर्पण के भाव से कुछ रह भी जाते हैं। हर प्रकार के लोग इस बाग में आते हैं, और सबकी अपनी अपनी नियति होती है।

जो व्यक्ति अपने जीवन की पतवार गुरु को समर्पित कर देता है, उसकी नियति को फिर गुरु निर्देशित करते हैं। ऐसे गिने-चुने दस-पन्द्रह लोग ही होते हैं, गुरु के सम्पूर्ण जीवन काल में। जो गुरु की परम्परा को आगे बढ़ा सकते हैं वे सौ नहीं होते, दस-बीस भी नहीं, दो या चार ही होते हैं। बाकी योगदान दे सकते हैं, लेकिन परम्परा का विकास नहीं कर सकते हैं। सभी संन्यासियों को एक ही स्तर में देखना, यह भी बहुत बड़ी भूल होती है लोगों की।

तो अपने आपको रिचार्ज करने के लिये समय-समय पर आश्रम जाना चाहिये। इसके लिए हमारे देश में अलग-अलग प्रकार के आश्रम होते हैं। कुछ होते हैं वृद्धाश्रम, जहाँ पर बूढ़े लोग जाते हैं और वहाँ पर उनके लिए पूरी सुविधा होती है। कुछ होते हैं बालकाश्रम, जहाँ पर बच्चे जाते हैं। कुछ होते हैं महिलाओं के आश्रम, जहाँ पर महिलाओं के उत्थान के लिये विशेष प्रावधान होता है। अपनी रुचि और रुझान के अनुसार आश्रम का चयन कर वहाँ पर साल में कुछ समय अवश्य बिताना चाहिए।

–15 अप्रैल 2014, चेम्बुर, मुम्बई

संस्मरण

निरंजन दिग्विजय

स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

मुंबई योग यात्रा में स्वामीजी ने योग के विभिन्न आयामों की जो अद्भुत व्याख्या की, वह जनमानस के सम्मुख प्रकाशित रूप में तो प्रस्तुत होगी ही, पर यहाँ मैं योग यात्रा से जुड़े कुछ व्यक्तिगत अनुभवों और संस्मृतियों को बतलाना चाहूँगा। इस योग यात्रा में एक बात जो बड़ी स्पष्टता से सामने आई, वह थी स्वामीजी की भूमिका में आया बदलाव। वे मात्र योग के शिक्षक या आचार्य नहीं रहे, उनका कार्यक्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक हो गया है। वे आगामी यौगिक परम्परा, या यूँ कहें यौगिक सभ्यता के प्रेरक, प्रणेता और कर्णधार हैं। पहले के योग महोत्सवों और कार्यक्रमों में वे स्वयं आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा, ध्यान आदि की कक्षाएँ संचालित करते थे, पर इस बार उन्होंने हममें से कुछ संन्यासियों को क्लास लेने का निर्देश दिया। नेपथ्य में रहकर वे हर गतिविधि का अवलोकन करते और सत्र के अंत में सारांश प्रस्तुत करते हुए कभी हठयोग के सूक्ष्म पहलुओं पर प्रकाश डालते तो कभी समझाते कि किस प्रकार सत्यानन्द योग की कक्षा में आसन, प्राणायाम, शिथिलीकरण और ध्यान का समावेश किया जाना चाहिए। और जब वे सत्संग देते तो योग के सिद्धान्त, साधना और जीवनशैली की ऐसी सारगर्भित व्याख्या करते कि सभी श्रोतागण दत्तचित्त होकर एक-एक शब्द सुनते, एक-एक शिक्षा ग्रहण करते। वहाँ मौजूद सभी लोगों के लिये यह एक नया और असाधारण अनुभव था।

शहरों में रहने वाले अधिकांश लोगों को योग के आधुनिक, व्यावसायिक अवतारों की आदत पड़ चुकी है, और वे योग को मात्र शारीरिक व्यायाम समझते हैं। ज्यादा-से-ज्यादा वे प्राणायाम या ध्यान के कुछ पैंतरों को आजमा लेते हैं, पर उनके योग की सीमा वहीं समाप्त हो जाती है। जब मुम्बईवासियों ने स्वामीजी को योग के द्वारा चित्तवृत्तियों को सम्भालने और अपने स्वभाव तथा व्यक्तित्व के गुणों को निखारने की बातें कहते सुना तो मंत्रमुग्ध हो गये। योग के इन पहलुओं को समझाना तो दूर, कोई योग शिक्षक इनका जिक्र तक नहीं करता, जबकि ये ऐसी बातें हैं जो हमारे जीवन को सीधे प्रभावित करती हैं।

स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से घोषित किया, 'योग अपने मन को व्यवस्थित और संतुलित करने की विद्या है।' यही वह मूल संदेश, विचारधारा और प्रेरणा है जिसे स्वामीजी जनसाधारण में बीजारोपित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस योग यात्रा में हमने स्पष्ट रूप से देखा कि उस बीज के अंकुरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है।

प्रेरणा की ज्योति जगाना

दोपहर के एक सत्संग कार्यक्रम में पहुँचने में मुझे थोड़ी देर हो गई। कार्यक्रम स्थल में प्रवेश करते ही मुझे कीर्तन की सुमधुर ध्वनि सुनाई दी। सामान्य रूप से कीर्तनों का संचालन हमारे साथ आई दो प्रतिभाशाली लड़कियाँ, अमरगीत और शिवंकरी करती थीं, पर हॉल में आते समय मुझे कीर्तन थोड़ा अलग लगा। मंच के पास पहुँचा तो देखा कि कुछ स्थानीय बच्चे 'त्रिपुरा सुन्दरी कामाक्षी माँ' और 'चरणों से हमको लगालै हो रिखिया वाले बाबा' जैसे चिरपरिचित कीर्तन बड़े भाव और तन्मयता से गा रहे थे, और खुद ही हार्मोनियम, मंजीरा और ढोलक जैसे साज़ भी बजा रहे थे। मैं उनके पीछे बैठकर कीर्तनों का आनन्द लेने लगा। ये बच्चे बिल्कुल बाल योग मित्र मंडल के बच्चों की तरह गा रहे थे। केवल एक अन्तर था। सभी बच्चे दृष्टिहीन थे। वे एक स्थानीय दृष्टिहीन स्कूल के बच्चे थे जिन्हें आश्रम से जुड़े किसी व्यक्ति ने यह सब सिखाने का बीड़ा उठाया था। और परिणाम भी उत्तम था। इन बच्चों ने इतने सुन्दर, भावपूर्ण कीर्तन गाए कि यह कल्पना कर पाना मुश्किल था कि उन्होंने कभी दिन का उजाला नहीं देखा।

यह स्वामीजी की प्रेरक की भूमिका है। स्वामीजी हर जगह तो पहुँच नहीं सकते, पर उनकी प्रेरणा हर स्थान पर जाकर कितनी ही जिन्दगियाँ छू सकती है, इसका ये दृष्टिहीन बच्चे ज्वलन्त उदाहरण हैं। किसी भक्त ने मुंगेर और रिखिया में बच्चों के साथ हो रहे काम को देखकर अपने पड़ोस के स्कूल में उसका अनुकरण करने की प्रेरणा पाई और उसका सुन्दर परिणाम सबके सामने है।

स्वामीजी जहाँ एक ओर लोगों को योग के माध्यम से असम्भव चीजें पा लेने की प्रेरणा देते हैं, वहीं दूसरी ओर वे एकदम व्यावहारिक और यथार्थवादी भी हैं। मुंबई के स्थानीय योग शिक्षकों के समक्ष जब उन्होंने योग के भावी विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की तो उनके विचार एकदम स्पष्ट थे। उन्होंने कहा, 'पहली चीज, अपना केन्द्र बंद करो। पिछले पचास साल योग-प्रचार के लिए थे और इस केन्द्र ने अपना वह उद्देश्य पूरा कर लिया है। अब केन्द्र बंद करके पुनर्गठन करने का समय है। पूरी शिक्षण प्रणाली और पाठ्यक्रम संशोधित होगा। जो लोग सत्यानन्द योग शिक्षक कहलाना चाहते हैं, उन्हें पुनर्प्रशिक्षित होना होगा, सत्यानन्द योग परम्परा से दुबारा जुड़ना होगा।' स्वामीजी का लक्ष्य दूरगामी है, और उस लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग भी उनके मन में स्पष्ट है।

निरंजन दिग्विजय

सम्पूर्ण भारत में होने वाले इन योग कार्यक्रमों को स्वामीजी ने भले ही भारत योग यात्रा की संज्ञा दी है, पर मेरे लिये तो यह किसी दिग्विजय यात्रा से कम नहीं। जैसे उनके दादा गुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने चौंसठ साल पहले शिवानन्द दिग्विजय

यात्रा सम्पन्न की थी, वैसे ही स्वामीजी की इन योग यात्राओं को 'निरंजन दिग्विजय' कहा जा सकता है। स्वामीजी सभी ओर सचमुच अभूतपूर्व विजय और सफलता प्राप्त कर रहे हैं। यह विजय धन या सम्पत्ति पर नहीं, दिलों पर है। जमीन जीत लेना सरल है, आज के युग में इसके लिए आधुनिक शस्त्रास्त्र पर्याप्त हैं, लेकिन मनुष्यों के दिलों को जीतना बेहद कठिन कार्य है।

एक उदाहरण देना चाहूँगा। चेंबुर में पहले सत्र के अंत में कुछ लोगों से बातचीत करते समय एक महिला ने मुझसे आकर पूछा, 'यह सत्यानन्द योग परम्परा आखिर है क्या?' उन्होंने सबेरे की कक्षा में भाग लिया था। उसमें जो अभ्यास कराए गए, वे उन्हें कुछ ज्यादा ही सरल लगे। मुष्टिका बंधन की विधि से अपनी मुठ्ठियों को घुमाते हुए वे कहने लगीं, 'आप लोगों ने तो बस बच्चों वाला योग सिखा दिया। मैं पिछले तीस साल से योगाभ्यास कर रही हूँ और उच्च अभ्यास सीखना चाहती हूँ। वह सब नहीं सिखा सकते क्या?' मैंने पूछा, 'माताजी, आप क्या चाहती हैं?' तपाक से जवाब मिला, 'मैं चेतना की चौथी अवस्था, तुरीया प्राप्त करना चाहती हूँ।'

सीमित समय में मैंने उन्हें यथासम्भव सत्यानन्द योग परम्परा के सिद्धान्तों से अवगत कराने का प्रयास किया, लेकिन वे अपनी ही धुन में थीं। अंत में मैंने कहा, 'देखिये माताजी, यह कार्यक्रम अगले तीन दिनों तक चलने वाला है। आधे घंटे में स्वामीजी का सत्संग होने वाला है, आप आकर उसे सुन सकती हैं। आपसे सिर्फ एक ही विनती है कि अगले तीन दिन बिना किसी पूर्वाग्रह के यहाँ आएँ और कार्यक्रम में भाग लें। अगर यहाँ बतलाई गई बातें आपको पसंद न आएँ तो कभी भी उठकर जा सकती हैं।' मुझे अगले कार्यक्रम में पहुँचना था, इसलिए मैंने बात वहीं खत्म कर दी।

मैं यह घटना भूल गया होता अगर हर कार्यक्रम में मुझे वह महिला समय से पहले पहुँचीं नहीं दिखलाई देतीं। उन्होंने सभी कार्यक्रमों में भाग लिया, हो सकता है दीक्षा भी ली हो क्योंकि मैंने उन्हें दीक्षा स्थल से बाहर निकलते भी देखा। खैर उनसे दुबारा बात करने का मौका तो नहीं मिला, पर उन्हें जरूर कुछ छू गया था। वरना पहले दिन की मुलाकात के बाद तो लगता था कि उन्हें इस कार्यक्रम से कुछ लेना-देना नहीं।

वह 'कुछ' तो स्वामीजी से ही आया था। जहाँ एक स्तर पर वे लोगों से शब्दों के माध्यम से सम्पर्क कर रहे थे, वहीं सूक्ष्म स्तर पर उनकी ऊर्जा और प्रेरणा का संचार भी हो रहा था। स्वामीजी सच में जादूगर हैं। हिमशैल की तरह सतह पर जो दिखाई देता है वह तो सिर्फ दस प्रतिशत है। बाकी नब्बे प्रतिशत सतह के नीचे रहस्यमय ढंग से लोगों को प्रभावित करता है। जैसे उस बुद्धिजीवी महिला को प्रभावित किया। कार्यक्रम की आलोचना करने के बावजूद भी रोज समय से पहले उपस्थिति दी। बस कुछ ऐसा ही है स्वामीजी का लोगों के दिलों को छू लेना और 'दिग्विजयी' बनना। हम सिर्फ यही प्रार्थना कर सकते हैं कि 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के लक्ष्य से प्रेरित उनकी यह दिग्विजय यात्रा नित-निरन्तर नई ऊँचाइयाँ छूती जाए।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

यौगिक जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 74, ISBN: 978-93-81620-69-4

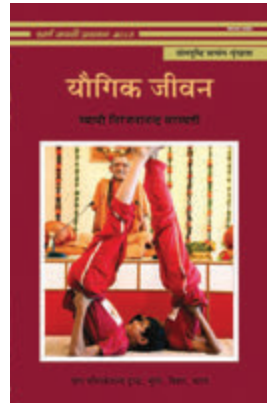

स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन

'हम योग को मात्र एक अभ्यास नहीं मानते, बल्कि 'निरंजनानंद योग संहिता' में योग को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है– अभ्यास, साधना, जीवनशैली और संस्कृति। हम योग को इन्हीं चार रूपों में देखते हैं, और यही योग के विकास का स्वाभाविक क्रम भी है।'

अगस्त 2011 में गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संगों का विषय दैनिक जीवन में योग का समावेश था। स्वामीजी ने मनुष्य जीवन में योग की भूमिका और प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए समझाया कि शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास के लिए विभिन्न योग प्रणालियों को जीवन में किस प्रकार संयोजित किया जा सकता है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13–15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

जनवरी 1	श्री हनुमान चालीसा
जनवरी 2–11	क्रिया योग सत्र (स्पैनिश एवं इटालियन)
जनवरी 21–24	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 24	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 1–मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1–30	योग अनुदेशक सत्र (हिन्दी)
मार्च 3–20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–दमा (हिन्दी)
जून 1–जुलाई 25	द्विमासिक योग विज्ञान एवं जीवनशैली परिचय सत्र (हिन्दी)
जुलाई 27–30	स्वामी निरंजन के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015–मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1–30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1–30	सत्यानन्द योग शिक्षकों के लिए बिहार योग प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 1–जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3–20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–मधुमेह (हिन्दी)
नवम्बर 1–7	स्वामी निरंजन के साथ योग साधना एवं स्वाध्याय सप्ताह
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।